# शोधादर्श

३०

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

नवम्बर १९९६

# शोधादर्श

३०

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
नवम्बर १९९६

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

## ★ विषय-क्रम ★


१. गुरुगुण-कीर्तन—अमितगति —श्री रमा कान्त जैन २१९
२. श्री महावीर वचनामृत २२२
३. Jainism is not a rebellious child of Vedicism or Hinduism —डा० ज्योति प्रसाद जैन २२३
४. सम्पादकीय—शिथिलोन्मुख दिगम्बर साध्वाचार पर एक तीखा प्रहार—श्री अजित प्रसाद जैन २२७
५. भारतीय दर्शन में सृष्टि वर्णन—डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी २३३
६. लुड्विग अलसडोर्फ —डा० (श्रीमती) रानी मजूमदार २४३
७. गंगा : आचार्य जिनसेन की दृष्टि में—डा० (कु०) मालती जैन २४८
८. गिरनार सिद्धक्षेत्र–ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में —श्री रामजीत जैन २५२
९. विचार-विन्दु : चमत्कार या वीतरागता ? —प्रा. सौ. लीलावती जैन २५६
१०. क्या वेदों में पशुहिंसा का उल्लेख है ? —आ० शिवचन्द्र शर्मा २६०
११. चिन्तन कण : मध्य लोक —श्री अजित प्रसाद जैन २६४
१२. जीवन दर्शन : मैं (भटकन से सुलझन तक)–श्री राजीव कान्त जैन २६७
१३. बहो, बहो, बहते चलो —डा० शशि कान्त २६८
१४. जिज्ञासायें एवं समाधान : —श्री अजित प्रसाद जैन
   १. निर्वाण कांड और उसके रचनाकार २६९
   २. नंग-अनंग कुमारों की निर्वाण-भूमि–सुवर्णगिरि या सोनागिर २७०
   ३. तीर्थंकरों की आयु, नाम २७२
   ४. केश लोंच २७५
१५. पर्यावरण और जीवदया : वृक्ष में भी प्राण हैं–श्रीमती गीता जैन २७७
१६. सम्पादक की ओर से : —डा० शशि कान्त
   आत्म निवेदन २८०
   जैन विद्या (Jainology) सम्बन्धी अध्ययन/अनुशीलन २८२

१७. साहित्य सत्कार :
दस धर्म-सार ; श्रावक कर्त्तव्य; तत्त्व चिन्तामणि ;
छहृ ढाला मन्थन ; जंचा सो लिखा ; शील मञ्जूषा ;
जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर : शान्ति उपदेश तत्त्व संग्रह ;
पिडस्थ ध्यान ; आत्म चिन्तन-चिन्तयता ; हिन्दी पूजन सार्थ ;
Illustrated Vegetarian Book ; शाकाहार पुस्तक
—श्री अजित प्रसाद जैन २८५
आपका स्वर्ग आपके हाथों में ; समग्र जैन चातुर्मास सूची ;
बसन्त बहार ; यशोधरचरितम्
—श्री रमा कान्त जैन २९४
जिनवाणी, सम्यग्दर्शन विशेषांक ;
अध्यात्म-पर्व पत्रिका, विशेषांक ; सत्यार्थ, विशेषांक ;
Glossary of Jaina Terms ; भक्तामर स्तोत्र ;
जैन कर्म-सिद्धान्त और मनोविज्ञान ;
जैन धर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता
—डा० शशि कान्त २९९
१८. समाचार-विमर्श —श्री अजित प्रसाद जैन
आचार्य द्वय के जन्म जयन्ति समारोह ३०५
तीर्थ क्षेत्रों के नाम से भारी धोखा-धड़ी ३०७
शौरसेनी प्राकृत गोष्ठी ३१०
अतिशय क्षेत्र केशव राय पाटन में भूगर्भ विस्तारीकरण ३१४
श्री सम्मेद शिखर जी ३१५
कुन्दकुन्द अंग्रेजी भाषा के समर्थक थे—मुनि श्री की अभूतपूर्व खोज ३१७
१९. अभिनन्दन ३१९
२०. समाचार विविधा ३२१
२१. शोक संवेदन ३२६
२२. आभार ३२७
२३. पाठकों की दृष्टि में ३२८
२४. अनुक्रमणिका शोधादर्श २६ से ३० ३३३

---

मूल्य १५ रु०
वार्षिक शुल्क ४० रु० (मनीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

---

# आवश्यक

**कृपया वर्ष १९९७ का वार्षिक शुल्क ४० रु० (चालीस रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को यथाशीघ्र भेजने का अनुग्रह करें।**

**—प्रबन्ध सम्पादक**

# आवश्यक सूचना

**शोधादर्श** चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

**शोधादर्श** में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

**शोधादर्श** में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

**शोधादर्श** में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

# निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक मण्डल

---

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

**णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं**

# शोधादर्श-३०

**वीर निर्वाण संवत् २५२२** **नवम्बर १९९६ ई०**

## गुरुगुण-कीर्तन

### अमितगति

प्राचीन जैन साहित्य में अमितगति नाम के एक से अधिक रचनाकार हुए हैं। इनके सम्बन्ध में उपलब्ध जानकारी नीचे प्रस्तुत है।

क. **आशीर्विध्वस्त-कन्तोर्विपुलशमभृतः श्रीमतः कान्तकीर्तेः**
**सूरेर्यातस्य पारं श्रुतसलिलनिधेर्देवसेनस्य शिष्यः।**
**विज्ञाताशेषशास्त्रो व्रतसमितिभृतामग्रणीरस्तकोपः**
**श्रीमान्मान्यो मुनीनाममितगतियतिस्त्यक्तनिःशेषसंगः ।।**

**—सुभाषितरत्नसंदोह, ९१५**

भावार्थ—काम का विध्वंस करने वाले, विपुल शान्ति के धारक, श्रीमान, कान्त (शुभ्र) कीर्ति वाले, श्रुतसागर के पारगामी देवसेन सूरि के शिष्य अशेष (सम्पूर्ण) शास्त्रों के विशेष ज्ञाता, व्रत-समिति धारकों में अग्रणी, क्रोधरहित (शान्त परिणामी), श्रीमान, मुनियों के मान्य और त्यक्त निःशेष संग (समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करने वाले) अमितगति यति थे।

**सुभाषितरत्नसंदोह** के कर्ता भी अमितगति हैं। उन्होंने यह रचना, प्रशस्ति में अंकित सूचनानुसार, राजा मुंज के राज्यकाल में विक्रम संवत् १०५० (ईस्वी सन् ९९३) में पौष शुक्ल पंचमी को पूर्ण की थी, किन्तु वह आचार्य माधवसेन के शिष्य थे। अतः उपर्युक्त

श्लोक में उल्लिखित अमितगति उनसे भिन्न हैं। उपर्युक्त श्लोक में जिन अमितगति को सादर स्मरण किया गया है वह देवसेन सूरि के शिष्य थे। देवसेन वीरसेन के शिष्य थे जबकि माधवसेन अमितगति (प्रथम) के शिष्य थे। उन्होंने संस्कृत में **योगसार प्राभृत** नामक आध्यात्मिक ग्रन्थ की रचना की थी। उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति में उन्होंने स्वयं अपने नाम के साथ 'निःसङ्गात्मा' विशेषण का प्रयोग किया है। वह माथुर संघ के दिगम्बर मुनि थे। डा० ज्योति प्रसाद जैन ने इनका समय लगभग ९०० ईस्वी अनुमानित किया है।

**ख.** **सुभाषितरत्नसंदोह** के कर्ता अमितगति के सम्बन्ध में अमरकीर्ति कृत **छक्कम्मोवएस** में निम्नलिखित प्रशस्ति है–

**अमियगई महामुणि मुणिचूडामणि आसितित्थु समसीलघणु।**
**विरइअ बहुसत्थउ कित्तिसमुत्थउ सगुणाणंदिय णिवइमणु॥**

भावार्थ–शान्त परिणामी, चरित्रवान, मुनिचूड़ामणि महामुनि अमितगति हुए थे जिन्होंने गुणयुक्त, आनन्ददायक, निवृत्तिमयी और कीर्ति बढ़ाने वाले बहुत से शास्त्रों की रचना की।

प्राकृत ग्रन्थ **छक्कम्मोवएस,** अर्थात्, 'षट्कर्म उपदेश', के रचयिता ने ऊपर बहुत से ग्रन्थों की रचना करने वाले जिन महामुनि अमितगति का सादर स्मरण किया है वे अब तक मात्र एक ग्रन्थ **योगसारप्राभृत** के कर्ता के रूप में ज्ञात निःसङ्गात्मा अमितगति यति से भिन्न अमितगति हैं। **छक्कम्मोवएस** में दी गई सूचनानुसार उल्लिखित अमितगति की शिष्य परम्परा में क्रमशः शान्तिषेण, अमरसेन, श्रीसेन और चन्द्रकीर्ति के उपरान्त ग्रन्थकर्ता अमरकीर्ति हुए थे। **धर्मपरीक्षा** नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि इन अमितगति के गुरु माधवसेन और प्रगुरु नेमिषेण थे, जो अमितगति (प्रथम) के शिष्य थे।

पूर्वोक्त **सुभाषितरत्नसंदोह** (९९३ ई०) और **धर्मपरीक्षा** (१०१३ ई०) के अतिरिक्त अमितगति (द्वितीय) ने वि० सं० १०७३ (१०१६ ई०) में मसूतिकापुर में संस्कृत **पञ्चसंग्रह** की रचना पूर्ण की

थी । **उपासकाचार** (अपरनाम, **अमितगति श्रावकाचार**), **आराधना** (शिवार्यकृत प्राकृत **मूलाराधना** का पद्यबद्ध सटीक संस्कृत अनुवाद) और **भावनाद्वात्रिंशंतिका** (सामायिक पाठ) इनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियां हैं ।

**तत्त्वभावना** नामक एक और कृति भी इनकी सूचित की गई है । **जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सार्द्धद्वयद्वीप प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति** और **वर्द्धमान-नीति प्रज्ञप्ति** के संस्कृत अनुवाद किये जाने का भी उल्लेख मिलता है । ये ग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध हैं ।

मालवा के परमार नरेश वाक्पतिराज मुंज (९७४-९९५ ई०), सिंधुल (९९६–१००९ ई०) और भोजदेव (१०१०–१०५३ ई०) के राज्यकाल में रहे इन अमितगति (द्वितीय) का समय डा० ज्योति प्रसाद जैन ने लगभग ९७५–१०२५ ई० अनुमानित किया है और उन्हें इन परमार नरेशों का श्रद्धाभाजन रहा बताया है ।

संस्कृत और प्राकृत भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखने वाले, शास्त्रों के ज्ञाता, कुशल रचनाकार, निस्पृही, निरभिमानी, स्व-पर कल्याण में निरत रहने वाले अमितगति (द्वितीय) अपने समय के ही बड़े प्रभावक एवं लोकसंग्राहक जैनाचार्य नहीं रहे अपितु सुललित भाषा-शैली में रचित उनकी रचनाएं आज भी अध्येताओं का मन मुग्ध किए हुए हैं । वे धार नगरी में स्थापित जैन विद्यापीठ के भी प्रमुख थे ।

**ग.** अमितगति नाम से ज्ञात उपर्युक्त दो जैनाचार्यों के अतिरिक्त पं० गोविन्द (लगभग १५०० ई०) के **पुरुषार्थानुशासन** की प्रशस्ति में भी पूर्व आचार्यों के क्रम में जयसेन आचार्य के साथ अमितगति यति का उल्लेख निम्नवत मिलता है जिन्होंने अनगारी (गृहत्यागी साधुओं) का आचार बताने वाले ग्रन्थ की रचना की थी—

**श्रीजयसेनाचार्योऽमितगतिर्यतिरेवमादयः सदयाः ।**
**ग्रन्थीकृत्य सदर्थानगारिणामूचुराचारान् ।।**

**घ.** श्रीभूषण सूरि द्वारा विक्रम संवत् १६५७ (१६०० ई०) की पौष शुक्ल तृतीया को पूर्ण किये गये **पाण्डव पुराण** की प्रशस्ति में भी अमितिगति को निम्नवत स्मरण किया गया है—

**अमित्यादिगतिर्येष्टः (?) शब्दव्याकरणार्णवः ।**
**पुनातु पावन मूर्तिर्यस्य संवर्तते क्षितौ ।।**

भावार्थ—शब्द और व्याकरण रूपी सागर को पार करने में जिनकी गति अमित है और जिनकी पावन मूर्ति क्षितितल में व्याप्त है ऐसे अमितगति हमारी रक्षा करें ।

ऊपर **ग** में सादर स्मृत गृह-त्यागी साधुओं के आचार पर ग्रन्थ रचना करने वाले अमितगति और उपरोक्त वैयाकरणी अमितगति **श्रावकाचार** की रचना करने वाले और कुशल कवि के रूप में प्रख्यात अमितगति (द्वितीय) से परवर्ती और भिन्न प्रतीत होते हैं ।

**—रमा कान्त जैन**

## श्री महावीर वचनामृत

**धम्ममहिंसा समं नत्थि**
अहिंसा के समान अन्य धर्म नहीं है ।

**असुभो जो परिणामो सा हिंसा**
जो अशुभ परिणाम है वह हिंसा है ।

**हिंसाविरइ अहिंसा**
हिंसा से विरत होना अहिंसा है ।

**आय तुले पयासु**
सभी प्राणियों को अपने समान समझो ।

**सव्वेसिं जीवियं पियं**
सभी को अपना जीवन प्रिय है । ★

# Jainism is not a Rebellious Child of Vedicism or Hinduism

—**Dr. Jyoti Prasad Jain**

Some modern scholars, owing mostly to deeprooted prejudices or other sentimental reasons, persist in asserting that Jainism is an offshoot of Brahmanism or that the Jainas are merely Hindu dissenters like the Buddhists, even though their religion is quite independent of and much older than the latter.

There are, however, absolutely no grounds for holding such an opinion. We have innumerable allusions in the Brahmanic literature from the *Vedas* down to the *Puranas* and other mediaeval works, to the Jainas, their religion, its Tirthankaras and even their doctrines, some time ridiculing and denouncing them, at other praising and applauding them, while very often misunderstanding and misinterpreting them. In certain places, devotion to Jina or to particular Tirthankaras, even Jaina ascetics, is ranked much higher than all the religious observances enjoined by the *Srutis* and *Smritis*.

Prof. V. P. Vadyar, a reputed Vedic scholar, says, "According to the Jaina scriptures, Marici, the grandson of Rsabhadeva, was a materialist. Because the *Vedas* represent the same materialistic spirit, it was certainly due to him that they came to be popular. Consequently there are some hymns to be found in the *Vedas* and *Puranas* in the memory of sage Marici, and there are mentions of Jaina Tirthankaras at many places. Hence there is no reason why we should not accept the existence of Jainism in the Vedic age."

Barrister C. R. Jain, successfully refuting the Hindu-dissenter theory, concludes, "Thus Jainism, the creed of the holy Tirthankaras, far from being a daughter or rebellious child of Hinduism, is actually the basis of that undoubtedly ancient creed, and if there was any borrowing, it was more the other way round." Prof. H. Jacabi says, "In conclusion, let me assert my conviction that Jainism is an original system, quite distinct and independent from all others ; and that, therefore, it is of great importance for the study of philosophical thought

and religious life in ancient India." M. M. Dr. Ganga Nath Jha, too, is of opinion that "The Jaina philosophy no doubt holds certain principles in common with Buddhism, Vedanta, Sankhya, Nyaya and Vaisesika systems, but this does not disprove its independent origin and free development. If it has some similarities with the other Indian systems, it has its own peculiarities and marked differences as well." Prof. G. Satyanarayan Murti also observes, "Some of its doctrines are peculiar to itself and leave a stamp of individualism on the Jaina creed;" and Dr. Guerinot, the French savant, that "Jainism is very original, independent and systematic doctrine." In his paper 'Jainas and Hindus', Prof. Chintaharan Chakravarti says, "Though it is not possible at this stage of our knowledge to determine the comparative antiquity of Jaina and Brahmanic things, the realistic and rationalistic tone of the former does not fail to attract notice of even a casual observer." Another authority asserts, "We make bold to say that Janism the religion of *Ahimsa* (non-injury) is probably as old as the Vedic religion, if not older ..... There is no doubt that the religion of *Ahimsa* was as old as the Vedas themselves" Yet another eminent thinker observes, "Besides there being numerous references to Jainism in the *Vedas* and *Puranas*, another simple fact shows that Jaina philosophy is as old as Hindu philosophy. It is a feature of the early epoch of the development of metaphysics that the category of quality is not defined... Yet another fact is its (Jaina) hero worship, the worship as deity of perfected mortals, and such worship is characteristic of all primitive religions. Lastly, there is its animistic belief, again a primitive notion." In fact, as Dr. Edward Thomas, speaking about the simplicity, hence greater antiquity of Jainism, remarks, 'The more simple faith *per se* must be primarily accepted as the predecessor of the more complicated." And "What more simple", asks Major Gen. Furlong, "can there be than Jainism, be it in worship, in rituals, or in morals ?"

Reviewing the whole situation, Prof. Ramaswami Ayengar may be quoted, who says, "For a scientific student of early Indian History, the history of the Jainas begins from the time of Mahavira who is supposed to be the founder of Jainism.

This conception regarding the origin of the faith has unfortunately led scholars to believe that Jaina tradition and literature are unreliable and useless for reconstruction of history. The less well informed among them went so far as to say that Jainism was an offshoot of Buddhism, simply because certain details in the lives of Mahavira and the Buddha are coincidental. Nor was Dr. Hoernle, perhaps the most well meaning amongst the writers on the subject, any nearer the truth when he said that "neither of the sects could lay claim to the originality regarding their moral code, but that the Brahmana ascetic was their model from which they borrowed many important practices and institutions. With, however, our present knowledge of the Jainas and their sacred literature, it is not difficult to prove that *Jainism, far from being an offshoot of Buddhism or Brahmanism, was one of the earliest home religions of India.* The simple devotion of the Jainas and their homely prayer, without the intervention of a Brahmana, may prove not merely their antiquity but, what is more important, the independent nature of their existence." Moreover, as F. W. Thomas avers, "Jainism, on the other hand (unlike Buddhism, etc.) has preserved down to the present time, its integrity as a separate world in the midst of Hinduism."

It will not be out of place in this context to quote a few legal authorities : T. N Sheshagiri Ayer, Judge of the Madras High Court, said, "I have no desire to date the Jaina religion at a period subsequent to the *Vedas* ; it might be simultaneous with them. Jainas are not the Hindu dissenters. I can fully bear out the statement that all Jainas are not Vaisyas. They are of all castes and grades."

The Hon'ble Justice Coomar Swami Sastri, Chief Judge of the Madras High Court, observed, "Were the matter *resintegra,* I would be inclined to hold that modern research has shown that Jainas are not Hindu dissenters, but that Jainism has an origin and history long anterior to the *Smritis* and commentaries which are the recognised authorities on Hindu Law and Usage. In fact, Mahavira, the last of the Jaina Tirthankaras, was a contemporary of Buddha, and died about 527

B.C. The Jaina religion refers to a number of previous Tirthankaras, and there can be little doubt that Jainism as a distinct religion was flourishing several centuries before Christ. In fact, Jainism rejects the authority of the *Vedas* which form the bed-rock of Hinduism and denies the efficacy of various ceremonies which Hindus consider essential."

And, Mr. Justice Rangnekar of the Bombay High Court remarks, "It is true the Jainas reject the scriptural character of the *Vedas* and repudiate the Brahmanical doctrines relating to obsequial ceremonies, the performance of *sraddhas* and the offering of oblations for the salvation of the soul of the deceased. Amongst them there is no belief that a son by birth or adoption confers spiritual benefit on the father. They also differ from the Brahmanical Hindus in their conduct towards the dead, omitting all obsequies after the corpse is burnt or buried. Now it is true as later historical researches have shown that Jainism prevailed in this country long before Brahmanism came into existence or converted into Hinduism. It is also true that owing to their long association with the Hindus, who formed the majority in the country, the Jainas have adopted many of the customs and even ceremonies strictly observed by the Hindus and pertaining to Brahmanical religion."

The late Pandit Jawahar Lal Nehru also asserted, "Jainism and Buddhism were definitely not Hinduism nor even Vedicism, still they were born in India and were an inseparable part of Indian life, culture and philosophical thought. The Jainism or Buddhism of India is a cent per cent product of Indian thought and civilization, yet none of them is Hindu. Hence it is misleading to call Indian culture by the name of Hindu culture."

In fact, in the words of Prof S. Srikantha Sastri, "It has become customary to take for granted the statements of certain historians that Jainism like Buddhism represents a reaction to the sacrificial cult of Vedic Aryans, and in the case of Jainism many scholars are reluctant to take back the history of the faith

(शेष पृष्ठ २२७ पर)

## सम्पादकीय

### शिथिलोन्मुख दिगम्बर साध्वाचार पर एक तीखा प्रहार

अब से ४०–४५ वर्ष पूर्व तक दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में केवल एक ही आचार्य (चा० च० आचार्य श्री शान्तिसागर म०) व उनके संघस्थ ७ मुनिराज ही थे। गत ४० वर्षों की कालावधि में आचार्यों की संख्या ही बढ़ कर लगभग दो दर्जन हो गई है। ऐसे आचार्य तो हैं ही जो अपने गुरुओं के पट्ट पर आसीन हैं (आ० शान्तिसागर म० की परम्परा के तो तीन पट्टाचार्य–तृतीय, पंचम, षष्टम–एक ही समय में विचरण कर रहे हैं), ऐसे भी आचार्य हैं जो उनके किसी चातुर्मास स्थल की समाज द्वारा आचार्य पद पर अभिषिक्त कर दिये गए हैं। इस बीच मुनियों एवं आर्यिकाओं की संख्या तो सैंकड़ों में हो गई हैं। ऐलक, छुल्लक, छुल्लिकाएं, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियां इनके अलावा हैं। ये सब मोक्ष मार्ग के साधक हैं तथा अभिनन्दनीय हैं। यदि साधकों की यह बढ़ी हुई संख्या दिगम्बर जैन समाज में चरित्र एवं संयम के उन्नयन का द्योतक होती, जैसा कि यह होना चाहिए थी, तो यह गर्व का विषय होती। किन्तु हुआ इसके विपरीत ही। जैन श्रावकाचार की मूलभूत पहचान (रात्रि

---

(पृष्ठ २२६ का शेष)

before Parsva in about the 9th century B.C...." But, as Dr. Jacobi observes, "There is nothing to prove that Parsva was the founder of Jainism ; Jaina tradition is unanimous in making Rsabha, the first Tirthankara, as its founder." And, Dr. S. C. Vidyabhusana declares, "Jainism reaches back to the beginning of the creation itself. I have no doubt in asserting that Jaina philosophy is much anterior to Vedanta and other systems."

Thus, it goes without saying that Jainism neither started as a reaction to the sacrificial cult of the Vedic Aryans, nor is it an offshoot of Brahmanism, and, therefore, the Jainas cannot be dubbed as Hindu dissenters in any way.

(Courtesy : Jain Journal, July 1983)

भोजन एवं अभक्ष्य त्याग तथा अहिंसामय सरल सत्यनिष्ठ जीवन-यापन) ही तेजी से खोती जा रही है। साधकों की संख्या में अभिवृद्धि के साथ-साथ साध्वाचार में भी गिरावट आई है। एक आचार्य श्री तो घ्रणित एवं लज्जाजनक आरोपों से घिरे होने के बावजूद अपने पूजनीय पद पर बने हुए हैं, आर्यिका-दीक्षाएं भी दे रहे हैं, और श्रद्धालु जन उनकी जय-जयकार भी कर रहे हैं।

शिथिलोन्मुख प्रवृत्ति मानव की कदाचित् स्वभावगत कमजोरी है। जैन श्रमण संघ में शिथिलाचार के बीज तो भगवान महावीर के निर्वाण के १६२ वर्ष बाद अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु स्वामी के दिवंगत होते ही प्रस्फुटित हो गये थे तथा भगवत् कुन्द-कुन्दाचार्य को श्रमणाचार के शुद्धिकरण तथा मूल आम्नाय की पुनर्प्रतिष्ठापना के लिए एक जिहाद जैसा अभियान ही छेड़ना पड़ा था। चतुर्विध संघ ने भी उन ज्योतिर्धर आचार्य के नाम-स्मरण को भगवान महावीर तथा गौतम गणधर के साथ सर्व मंगलमय घोषित करके उनके महान् उपकार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन किया। जैन धर्म की दूसरी शाखा श्वेताम्बर आम्नाय में भी शिथिलाचार की बाढ़ को रोकने के लिए समय-समय पर क्रियोद्धारक संत होते रहे हैं।

पूज्य मुनि श्री सरल सागर म० आज के उन इने-गिने मुनि पुंगवों में से हैं जो ढाई हजार वर्ष पूर्व गणधरों द्वारा उपदिष्ट तथा मूलाचार में निरूपित साधु जीवन को आज के लिए भी श्रमणाचार का आदर्श मानते हैं। हम नहीं जानते कि वे उसे कितना जी पा रहे हैं किन्तु वे पूर्ण आस्था के साथ उसे अपने जीवन में उतारने की आकांक्षा अवश्य करते हैं। मुनि श्री ने दिगम्बर जैन श्रमणाचार में वर्तमान में द्रष्टिगोचर हो रही विकृतियों एवं विसंगतियों से व्यथित होकर अपनी नवीनतम कृति **नग्नत्व समीक्षा** में एक कुशल सर्जन की तरह श्रमणाचार के शरीर की चीडफाड़ करके तमाम गिलाज़त को बाहर निकाल कर रख दिया है। प्रस्तावना में मुनि

श्री ने यह भी स्पष्ट किया है कि **इस पुस्तक में उन्होंने प्रत्यक्ष घटित घटनाओं एवं अनुभूतियों का ही संकलन किया है।**

पुस्तक में नग्नत्व (अर्थात आज के दिगम्बर जैन मुनि के आचार) की विवेचना नौ काण्डों (अध्यायों) में की है। कांडों के शीर्षक कुछ अटपटे लगते हैं पर कांड को पूरा पढ़ जाने पर मुनि श्री का आशय स्पष्ट हो जाता है।

संक्षेप में, मुनि श्री का कहना है कि—"आज के अधिकांश मुनि तन से तो नग्न (निर्वस्त्र) हो गए हैं पर मन से नहीं हो पाये हैं। उनके मन में धन की वासना बनी हुई है तथा द्रष्टि धन प्रधान है, भक्त यदि धनवान हो तो विशेष कृपा पात्र हो जाता है। ऐसे साधु चातुर्मास आदि में व्यर्थ के रईसी खर्चे करा कर मानो अपने ही वैभव का प्रदर्शन देख कर अपने अहं की तुष्टि करते हैं। कोई-कोई साधु अधिक उपवास करने की क्षमता अर्जित किये हुए है, कोई विशेष ज्ञानवान है और कोइ प्रवचन कुशल है। ऐसे साधु तो बिरले ही हैं जिनमें ये तीनों गुण हों, पर ऐसे भी हैं जो इन तीनों से गरीब्र हैं। वे केवल दया के पात्र ही हो कर रह गए हैं, वे बहुमान के पात्र नहीं बनते। आज अनेक साधु बहु आरम्भ और बहु परिग्रह में लिप्त हैं जो स्पष्ट ही नरक गति का कारण है। कुछ साधु तीर्थ क्षेत्रों पर स्थायी रूप से ही निवास करने लगे हैं तथा श्रावकों को अन्य स्थानों से आकर उनकी आहार व्यवस्था करनी पड़ती है। कुछ स्वच्छन्दियों द्वारा यह अंध परम्परा डाली जा रही है। यह आगम सम्मत नहीं है।

आज दिगम्बर मनियों के निर्देशन व सानिध्य में राजनेताओं का सम्मान किया जा रहा है, यहाँ तक कि उनको प्रतिष्ठित तीर्थंकर मूर्तियां भी सम्मान स्वरूप भेंट की जा रही हैं। हिंसा के समर्थक राजनेताओं की खुशामद करना भी राजनीति ही है जिसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। एक दिगम्बर मुनि (महावीर जयन्ति महोत्सव में आमन्त्रित) मुख्य मंत्री जी के लगे

गुणगान गाने, उनकी झूठी सच्ची विशेषताएं बताने, उनसे धन हथियाने के लिए। मंत्री जी के बोलने का नम्बर आया, तब उन्होंने कहा–'यहां तो उल्टा हो रहा है, मैं तो यहाँ महावीर के गुणगान सुनने आया था, लेकिन यहाँ तो मुझे मेरे ही गुणगान सुनने को मिले।'···साधु की नग्नता आज उपहासादि का स्थान बन गई है। अनेक साधु तन से नग्न होते हुए भी अपरिग्रही नहीं ···आधुनिक सुविधाओं का भी उपभोग करते हैं, ···**नग्नत्व त्याग का प्रतीक है, ग्रहण का नहीं।**

बहुत से साधु आज क्षेत्रोद्धार के कार्यों में सक्रियता से अपने नग्नत्व का दुरुपयोग कर रहे हैं। उनकी सक्रियता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म प्रभावना आदि के कार्यों में समाज इनके सक्रिय सहयोग के बिना पंगु है। उसकी इस पंगुता का लाभ उठा रहा है प्रसिद्धि की चाह में अटका तथा अपने लक्ष्य से भटका साधु। साधु अपने नाम से क्षेत्रों पर नव निर्माण कराने व नए क्षेत्रों का निर्माण कराने में आए दिन करोड़ों रुपयो की योजनाएं बना कर समाज से कार्यान्वित करा रहा है तथा क्षेत्रोद्धारक की उपाधि लगा कर अपने को गौरवान्वित कर रहा है।

नग्नत्व एक ऐसा उज्जवल वस्त्र है जिसमें छोटे से छोटा दाग (दोष) भी दूर से ही दिखाई पड़ जाता है। दिगम्बरत्व से परिग्रह का कोई मेल नहीं है। नग्नत्व को निर्दोष बनाए रखने के लिए संसार, शरीर और भोगों से पूर्ण उदासीनता होना परम आवश्यक है············।"

मुनि श्री की **समीक्षा** रोचक है, चिन्तनीय है तथा मोक्ष मार्ग के साधकों को आत्मालोचन का सुअवसर प्रदान करती है।

इस प्रसंग में हम एक अनन्य चिन्तक विद्वान मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर म० के उद्‌गार (**रत्नराज**, जुलाई ९६, के अंक में प्रकाशित उनके लेख "दीक्षा मूल्यों की अन्तर्परख" से) नीचे उद्‌धृत कर रहे

हैं जो उन्होंने अपने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधुओं को परिलक्षित करके लिखा है—

"इस समय जैन समाज में करीब दस हजार साधु-साध्वियां हैं।......इस सदी में धुआंधार दीक्षाएं हुई हैं......तत्त्व बोधि को कितने उपलब्ध हुए यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु **दीक्षा के मूल्यों में निरन्तर गिरावट आई है।** साधु संस्था का समयीकरण और आधुनिकीकरण हुआ है। **सामयिक परिवर्तन अपेक्षित है पर उतना ही जितना उचित हो।** ......मेरी दृष्टि में एक गुरू जब तक पूरी तरह आत्म विश्वस्त न हो जाय कि मैं अध्यात्म को उपलब्ध हूँ उसे तब तक किसी को भी अपना शिष्य बनाने की सोचनी भी नहीं चाहिए ......मैं ऐसे साधुओं को भी जानता हूँ जो पांच-पांच सात-सात हजार में खरीद कर साधु बनाए गए हैं, कईयो के घर माहवारी भी पहुंचती है। कई साधु-साध्वी तो ऐसे भी देखने को मिले हैं जो पूरी तरह वेशधर ही हैं और इस वेश में वे अपनी घर-गृहस्थी की समस्याएं सुलझाते हैं। ......साधु जीवन अब साधु कम, सांसारिक और प्रवृत्तिमूलक अधिक हो गया है। **क्रियाकाण्ड के विरोध में जन्मा धर्म अब खुद ही एक क्रियाकाण्ड बन गया है।** .........आज साधुओं द्वारा दृश्य और श्रव्य साधनों का भी उपयोग होने लगा है। धन से मानो सब का ही सम्बन्ध है। जो जितना बड़ा मुनि उसकी आर्थिक पहुंच भी उतनी ही विस्तृत है। कई साधु-साध्वियां तो अपने पास ही धन संग्रह करने लगे हैं तो कईयों के अपने-अपने सम्बन्धित सेठ-साहुकारों के पास धन रखे जाने के तथ्य सामने आए हैं। मेरी दृष्टि में तो **हर किसी को मुनि बनने की प्रेरणा देने के बजाए उसे गृहस्थ सन्त बनने की प्रेरणा दी जानी चाहिए** ......बीसवीं सदी के चर्चित अध्यात्म साधक श्रीमद् राजचन्द्र ने मुनि दीक्षा लेने के बजाए धोती और बंडी में ही मुनित्व का वरण किया, अध्यात्म को बखूबी जिया और देहातीत जीवन जीते हुए अन्ततः आत्म समाधि को उपलब्ध हुए।

घर में रह कर मुनित्व को जीओ; उसके उपरान्त यदि दीक्षा होती है तो भी दीक्षा केवल उन्हीं को दी जानी चाहिए जो इसकी पात्रता रखते हों।"

मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी का उपर्युल्लिखित सत् परामर्श जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के पूज्य आचार्यों द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य है। श्रमणाचार में वर्तमान में परिलक्षित हो रही शिथिलता के पनपने तथा बढ़ते जाने का एक बहुत बड़ा कारण अपरिपक्व मुनि दीक्षाएं ही हैं। दिगम्बर मुनि वेश साधु जीवन का शिखर बिन्दु है। नग्नता वीतरागता, अपरिग्रहता, जितेन्द्रियता, कषायों की मन्दता तथा संसार-देह से वैराग्य का प्रतीक है जिसमें गृहस्थ तीर्थंकर महाप्रभु के साधनारत जीवन्त रूप को देखता है। उपरोक्त लक्षणों में से किसी की भी कमी से दिगम्बर मुनि वेश दूषित होता है, उपहासादि को प्राप्त होता है। हमारी समझ में जैन साध्वाचार की सचेल छुल्लक-ऐलक श्रेणियों में भी आध्यात्मिक विकास की भारी सम्भावनाएं हैं और जब तक साधक व उसके गुरू पूर्ण रूप से आश्वस्त न हो जाएं कि साधक तप-संयम के दीर्घ कालीन अभ्यास से उपरोक्त गुणों को उपलब्ध हो गया है, उसे दिगम्बर मुनि दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए। दिगम्बर मुनि साधु जीवन के चरम शिखर हैं, त्रिकाल वन्दनीय साधु परमेष्ठी हैं। उनकी गरिमा में यदि कोई कमी परिलक्षित होती है तो हमारी आस्था को ठेस लगती है।

मुनि श्री का यह सुझाव भी चिन्तनीय है कि आज के बदले सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व निर्धारित श्रमणाचार में सामयिक परिवर्तन संशोधन अपेक्षित हैं। क्या परिवर्तन करना समयोचित होगा, यह तय करना हमारे वरिष्ठ आचार्यों व मुनियों का काम है।

**—अजित प्रसाद जैन**

# भारतीय दर्शन में सृष्टि वर्णन

**–डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी**

अत्यन्त प्राचीन काल से व्यक्ति के मन में सृष्टि के सम्बन्ध में जिज्ञासायें उठती रही हैं कि यह विश्व कैसे बना ? इसका निर्माता कौन है ? यह किन-किन तत्त्वों के मिलने से बना ? इसमें इतनी विविधता क्यों है ? आदि । समय-समय पर इन प्रश्नों का विद्वानों ने समाधान करने का प्रयास किया । किसी ने सृष्टि को भौतिक तत्त्व अथवा परमाणु से उत्पन्न माना । किसी ने इसे चेतन एवं अचेतन तत्त्वों से संयुक्त मान लिया । कोई इसे असीम सत्ता ईश्वर का कार्य मान लेता है तो कोई इसे असीम सत्ता द्वारा निर्मित नहीं मानता है । सृष्टि वर्णन भारतीय दर्शन का प्रमुख विषय रहा है ।

**वेद : ऋग्वेद** में सृष्टि सम्बन्धी मान्यता पर प्रकाश डालने वाले कई मंत्र हैं । **नासदीयसूक्त** में सृष्टि से पूर्व एवं सृष्टि के बाद की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि उस समय न असत् था, न सत् था, न रज् (अन्तरिक्ष) था और न व्यापक व्योम था । क्या ढ़का हुआ था ? किसका आश्रय या शरण था ? क्या गहन गम्भीर जल ही विद्यमान था ? उस समय मृत्यु, अमृत, रात, दिन, वायु आदि या अन्य किसी भी चिन्ह की सत्ता स्वीकार नहीं की गई है । वह मात्र एक परमात्मा स्वधा अपनी स्वयमेव की धारणा शक्ति से सम्पन्न था, इसके अतिरिक्त कोई और नहीं था । तब अन्धकार से आवृत्त, गहन अन्धकार ही था, यह सब चिन्ह विहीन जल ही था, जो भी एक तत्त्व था वह तुच्छ से आवृत्त और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ था । आदि सर्ग काल में जो संकल्प होता है वही जगत् का पहला कारण है । ज्ञानी ऋषि अपने अन्तःकरण में विचार कर अथवा विचारपूर्वक बुद्धि के द्वारा अव्यक्त में व्यक्त के सम्बन्ध को जान जाते हैं । वन का जाल सहसा विस्तृत मध्य में हो जाता है अथवा नीचे या ऊपर प्रेरणा के आधारभूत मूल तत्त्व रूप प्रकृति अपकृष्ट और नियन्ता उत्कृष्ट है । **नासदीय सूक्त** की यह

व्याख्या हमारे लिए आदि सर्ग की निर्देशिका के रूप में पथ-प्रदर्शक का कार्य करती है। इसके अतिरिक्त विविध सृष्टि कहाँ-कहाँ से उत्पन्न होती है, कौन इसके वास्तविक स्वरूप को जानता है और कौन इस विषय में गम्भीर कथन करता है, आदि महत्वपूर्ण विषयों पर भी **ऋग्वेद** में प्रकाश डाला गया है।

विश्व की विभिन्नता पर विचार करते हुए **अथर्ववेद** में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं। यह भूमि किसने बनाई ? इसके ऊपर यह आकाश किसने प्रतिस्थापित किया ? ऊपर यह तिरछा फैला अन्तरिक्ष किसने स्थापित किया ? अस्तु, एक वेद में जहाँ सृष्टि की विभिन्नता के विषय में प्रश्न किया जाता है कि इसका रचयिता कौन है, वही दूसरे वेद में सृष्टि के रचयिता पर प्रकाश डालते हुए प्रलय की स्थिति का भी वर्णन कर दिया जाता है। इतना ही नही, उसे परम पुरुष मान लिया जाता है जो सर्ग और प्रलय दोनों ही अवस्थाओं में स्थित रहता है।

**उपनिषद्** : उपनिषदों में सृष्टि को समझने के लिए प्रश्न-प्रतिप्रश्न की प्रणाली का उपयोग किया गया है। **श्वेताश्वतर उपनिषद्** में ऋषि अपनी जिज्ञासा इस रूप में रखते हैं—यह ब्रह्म कहाँ से आया है ? हम किस प्रकार जीवन धारण करते हैं ? हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं ? किस कारण से जीवित कहे जाते हैं ? प्रलयकाल में हमारी स्थिति कहाँ और कैसी रहती है ? दुख और सुख के उपभोग में हमारा कौन अधिष्ठाता या नियंता रहता है ? प्रत्येक प्रश्न का समाधान सहजता से दिया जा सकता है लेकिन वही असहज और आसामान्य बन जाता है जब क्यों और कैसे की एक लम्बी शृंखला बन जाती है।

**तैत्तिरीयोपनिषद्** में सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुये कहा गया है कि उस ब्रह्म की प्रेरणा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी और पृथिवी से औषधियाँ रूप नाना जगत् निर्मित हो जाता है। यहाँ ब्रह्म को

निमित्त कारण के रूप में प्रतिपादित करते हुये उसकी महिमा का गुणगान किया गया है। ब्रह्म ने सृष्टि की रचना की, लेकिन उसने कैसे इसका सृजन किया ? क्या उसके अन्दर सृष्टि सामग्री थी जिसकी सहायता से एक जादूगर की भांति उसने इसे बाहर निकाल दिया ? पं० आर्य मुनि, स्वामी दयानन्द और डा० जयदेव विद्यालंकार ने उसकी जो व्याख्या की हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि आकाश अवगाहन प्रदान करने वाला एक तत्त्व है और सृष्टि की समस्त वस्तुएँ यहीं अपना स्थान प्राप्त किए हुए हैं।

**मुण्डकोपनिषद्** में सृष्टि-रचना का प्रतिपादन उपादान की दृष्टि से न करके निमित्तकारण की दृष्टि से किया गया है। ब्रह्म अपने संकल्परूप तप से इस सृष्टि को रचता है। इस तप के परिणामस्वरूप अन्न, मन, पंचमहाभूत, समस्त लोक, कर्म तथा कर्मों के कारण उत्पन्न अवश्यंभावी सुख-दुःख रूप फल उत्पन्न होते हैं। प्राण, मन, इन्द्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि से लेकर समस्त विश्व को धारण करने वाली पृथिवी पर्यन्त सभी उसी (ब्रह्म) से उत्पन्न हुए हैं।

**प्रश्नोपनिषद्** में सृष्टि और प्रलय की स्थिति का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि जिस प्रकार पक्षीगण निवास के लिए वृक्ष पर ठहरते हैं उसी प्रकार प्रलय काल में सभी स्थूल और जड़ जगत् अपने-अपने कारण को क्रमशः प्राप्त करते हुए मूल प्रकृति में और मूल प्रकृति परमेश्वर में मिल जाते हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा इनकी तन्मात्राएं अर्थात् गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द जो महाभूतों के कारण हैं इनमें पृथिवी आदि का लय हो जाता है। इसके साथ-साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों का लय अपने पाँच विषयों में अर्थात् उन्हीं सूक्ष्मादि तन्मात्राओं में हो जाता है। इसके अतिरिक्त जो दृष्टा-श्रोता पुरुष चेतन आत्मा है उसका भी लय परमात्मा में हो जाता है। इस सम्बन्ध में **तैत्तिरीय** और **ब्राह्मण** में उद्धृत इस वाक्य पर विचार करना समीचीन होगा जिसमें यह

कहा गया है कि ब्रह्म ही वन है और वृक्ष है । इसी से द्यावापृथिवी की उत्पत्ति कही गई है । **कठोपनिषद्** एवं **गीता** में विश्व को उर्ध्वमूल और अधः शाखा वाला अश्वत्व वृक्ष कहते हुए ब्रह्म से इनका सम्बन्ध जोड़ा गया है ।

**न्याय-वैशेषिक :** भौतिक परमाणु इस सृष्टि के मूल कारण हैं । सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद पुनः सृष्टि, यह क्रम अनादि रूप में हमेशा ही चलता रहता है । इस क्रम का प्रधान कारण परमाणु को ही माना गया है क्योंकि महापृथ्वी, महातेज, महावायु आदि चार प्रकार के भूत द्रव्यों की उत्पत्ति इनके परमाणुओं से ही होती है । घट-पटादि समस्त सावयव जगत् आदि और अन्त वाला है । परमाणु ही इस सावयव जगत् का आदि और अन्त कारण है । परमाणुओं का संयोग आदिकारण और परमाणु पर्यन्त विभाग अन्त-कारण है । जीव जो चेतन और क्रियावान है उसके परमाणुओं में अदृष्ट की सहायता से क्रिया उत्पन्न होती है । वह क्रिया अपने आश्रयीभूत परमाणुओ में पारस्परिक संयोग को उत्पन्न करती है और इस कारण द्वयणुक, त्रयणुक आदि क्रम से उन परमाणुओं के संयोग से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ये चार प्रकार के भूत द्रव्य उत्पन्न होते हैं । आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये पांच द्रव्य नित्य माने गये हैं । नित्य होने के कारण न तो इनकी उत्पत्ति होती है और न विनाश ही अर्थात् ये पहले से ही विद्यमान रहते हैं। इन सबकी सहायता से इन्दियों सहित शरीर उत्पन्न होता है । सृष्टि और संहार का कर्त्ता परमेश्वर है । उसी की इच्छा से सृष्टि और प्रलय होता है । यही कारण है कि किसी सृष्टि को प्रथम सृष्टि नहीं कहा जा सकता है । प्रलय के समय केवल चार भूतों के परमाणु, पाँच नित्य द्रव्य तथा जीवात्माओं के संस्कार बच जाते हैं जिनसे फिर अगली सृष्टि की रचना होती है । न्याय-वैशेषिक का यह मत परमाणुवाद के नाम से विख्यात है ।

**सांख्य-योग :** यहाँ दो मूल तत्त्व–प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) की सत्ता मानी गई है और सम्पूर्ण सृष्टि का कारण इन्हीं

दोनों को माना गया है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति जड़ है और संसार की जितनी भौतिक वस्तुएं हैं वे सब प्रकृति के परिणाम या विकार हैं। लेकिन जड़ या अचेतन होने के कारण प्रकृति स्वयं अकेले सृष्टि नहीं कर सकती। उसे चैतन्य पुरुष की आवश्यकता रहती है क्योंकि पुरुष की चेतना से ही प्रकृति की क्रिया निरूपित होती है। प्रकृति सत्व, रजस् और तमस्, इन तीन तत्त्वों से मिल कर बनी है। सृष्टि के पूर्व ये तीन तत्त्व या गुण साम्यावस्था में रहते हैं। जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तब प्रकृति की साम्यावस्था में गुणक्षोभ उत्पन्न होता है। यह गुणक्षोभ प्रकृति और पुरुष के मिलन से प्रारंभ होता है। इस संयोग के फलस्वरूप प्रकृति के तीनों गुणों की साम्यावस्था में विकार आ जाता है और इनमें परस्पर पृथक्करण व संयोजन होता है, फलस्वरूप नाना प्रकार के सांसारिक विषय उत्पन्न होते हैं। सृष्टि के क्रम में सबसे पहले महत् या बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति होती है, तत्पश्चात् क्रम से महत् से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्राएं, पंचतन्मात्राओं से पंच महाभूत। इन्हीं महाभूतों से नाना विषयक संसार का निर्माण होता है। पंचमहाभूतों की उत्पत्ति २५ तत्त्वों के सहयोग से होती है। इन्हीं २५ तत्त्वों में एक तत्त्व और, ईश्वर, को जोड़कर योगदर्शन अपनी सृष्टि प्रक्रिया को पूर्ण करता है तथा सेश्वर सांख्य के नाम से जाना जाता है।

**मीमांसा दर्शन** : मीमांसा दर्शन की सृष्टि सम्बन्धी अवधारणा उसकी ज्ञान मीमांसा पर आधारित है। मीमांसक प्रत्यक्ष ज्ञान को सत्य मानते हैं और उसी के आधार पर जगत् एवं उसके समस्त विषयों को भी सत्य स्वीकार करते हैं। नरक, स्वर्ग, आत्मा आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके अस्तित्व की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर नहीं की जा सकती है लेकिन मीमांसक गण इनके अस्तित्व की सिद्धि हेतु अन्य युक्तियों का आश्रय लेते हैं। इनके अनुसार आत्मा और परमात्मा नित्य अविनाशी पदार्थ हैं। कर्म के नियमानुसार

सृष्टि की रचना होती है। संसार ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय जो सुख-दु:ख भोग के साधन हैं, और शरीर या भोगायतन जिसमें जीवात्मा अपने-अपने पूर्व कर्मों का भोग करते हैं, एवं बाह्य वस्तुएं जो भोग के विषय हैं—रूपी तत्त्वों से बना है। कुछ मीमांसक वैशेषिकों की तरह परमाणु को भी सृष्टि का कारण मानते हैं लेकिन मीमांसा मत में परमाणु ईश्वर द्वारा संचालित नहीं होते वरन् कर्म के नियमानुसार ही परिवर्तित होते हैं। इनके अनुसार जितने जीव हैं उतने ही आत्मा हैं, अर्थात् मीमांसक बहुआत्मवादी हैं। जीवात्मा बन्धन में आते हैं और उनसे मोक्ष पा लेते हैं। ये ईश्वर को जगत्कर्त्ता नहीं मानते। सृष्टि का उत्स कर्म को माना गया है।

**वेदान्त :** वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को मूल तत्त्व माना गया है। सृष्टि को इसी ब्रह्म की शक्ति से प्रकट माना गया है। माया ब्रह्म की शक्ति और प्रकृति है। इसी माया शक्ति के द्वारा मायावी ईश्वर वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि की लीला दिखलाते हैं। इसी लीला को अज्ञानी सत्य समझ लेते हैं। माया हम लोगों के लिए भ्रम का कारण है। इसी भ्रम के कारण जगत् के आधार ब्रह्म का स्वरूप छिप जाता है और संसार के रूप में दिखलाई पड़ता है। आचार्य शंकर अद्वैत मत के संस्थापक हैं। वे ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं मानते हैं। वे ब्रह्म को ही एक मात्र सत्य मानते हैं तथा शेष अन्य को मिथ्या। जो सतत् समभाव से विद्यमान रहे वही सत्य है। सत्य की इस परिभाषा को मानने पर अद्वैतवादियों के लिये जगत् सत्य नहीं रह जाता है क्योंकि जगत् सदा परिवर्तनशील है। जगत् की पारमार्थिक स्थिति न होने पर भी व्यवहारिक सत्ता है। आचार्य शंकर ने ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण बतलाया है, वे कर्म का तिरस्कार नहीं करते प्रत्युत चित्तशुद्धि के लिये फल-कामना-हीन कर्म के अनुष्ठान पर जोर देते हैं।

अद्वैत मत में जीव स्वभावत: एक है। परन्तु देहादि उपाधियों के कारण नाना प्रतीत होता है। रामानुज के द्वैत मत में जीव

अनन्त हैं, वह एक दूसरे से नितांत पृथक् हैं। अद्वैत मत के अनुसार मुक्त आत्मा ब्रह्म के साथ अभिन्न रूप हो जाता है परन्तु रामानुज के अनुसार वह ब्रह्म के स्वरूप तथा गुण को अवश्य पा लेता है, लेकिन ब्रह्म के साथ मिलकर एक नहीं होता। मुक्त जीव में सर्वज्ञता आ जाती है, परन्तु सर्वकर्तृत्व गुण ईश्वर के ही साथ रहता है और जीव में अविद्या के आश्रित होने की आशंका सदा बनी रहती है।

शंकराचार्य ने सृष्टि का मूल तत्त्व शुद्ध सत्-चित् को ही माना है। जगत् के क्रमिक विकास की उपमा मनुष्य की तीन अवस्थाओं से दी गई है—सुषुप्तावस्था, स्वप्नावस्था और जाग्रतावस्था। सुषुप्तावस्था का ब्रह्म ईश्वर है। स्वप्नावस्था का ब्रह्म हिरण्यगर्भ है और जाग्रतावस्था का ब्रह्म वैश्वानर है। सुषुप्तावस्था का ब्रह्म माया का आश्रयस्थल है और यह अव्यक्त सूक्ष्म की अभिव्यक्ति का प्रारम्भ है। जब माया सूक्ष्म रूप से व्यक्त होती है तब उसका आधार ब्रह्म हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा अथवा प्राण) कहलाता है। इस रूप में ब्रह्म का अर्थ है सकल सूक्ष्म विषयों की समष्टि। जब माया स्थूल रूप में अर्थात् दृश्यमान् विषयों में अभिव्यक्त होती है तब उसका आधार ब्रह्म 'वैश्वानर' (विराट) कहलाता है। इस रूप में ब्रह्म का अर्थ है सभी स्थूल विषयों की समष्टि अर्थात् समस्त व्यक्त संसार जिसमें सभी जीव सम्मिलित हैं।

**चार्वाक् :** सृष्टि के सम्बन्ध में चार्वाक दार्शनिकों का मत कुछ अलग है। ये प्रत्यक्ष को ही एक मात्र प्रमाण मानते हैं। सृष्टि सम्बन्धी मत भी प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रभावित होता है। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, अदृष्ट आदि पारमार्थिक सत्तायें हैं और इनका प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं है अतः चार्वाक् इन सत्ताओं को नही मानते हैं। वे केवल जड़ को ही एकमात्र सत् मानते हैं। जगत् के निर्माण के हेतु आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी आदि पंचभूतों में चार्वाक् आकाश के अस्तित्व को नहीं मानता है क्योंकि आकाश का ज्ञान अनुमान से होता है, प्रत्यक्ष से नहीं। उनके अनुसार प्राणियों का जन्म

तत्त्वों के सहयोग से होता है और उन तत्त्वों के बिखरने से मृत्यु होती है। चैतन्य को वे शरीर का गुण मानते हैं। वे जगत् के किसी स्रष्टा की कल्पना को अनावश्यक मानते हैं, वरन् जड़ तत्त्वों के सम्मिश्रण से संसार की उत्पत्ति मानते हैं।

**जैन :** जैन दार्शनिकों ने सृष्टि को अनादि माना है। इसे छह द्रव्यों से निर्मित माना है। ये छह द्रव्य हैं–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल। जीव चेतन सत्ता है तथा पुद्गल अचेतन अथवा जड़ है। इसे भौतिक द्रव्य माना गया है। धर्म को गति में सहायक माना गया है। यह जीव-अजीव सभी को ठीक उसी प्रकार गतिशीलता प्राप्त करने में सहायता करता है जैसे मत्स्य को जल तैरने में सहायता करता है। जिस प्रकार मछली जल में स्वयं तैरती है, ठीक उसी तरह से जीव-अजीव स्वयं गति करते हैं। मछली बिना जल के तैर नहीं सकती जबकि वह स्वयं तैरती है, इसी तरह से बिना धर्म द्रव्य के जीव-अजीव गतिशीलता को नहीं प्राप्त कर सकते। अधर्म द्रव्य स्थिर दशा को प्राप्त करने में सहायता करता है। जिस प्रकार कोई थका हुआ पथिक विश्राम हेतु सघन वृक्ष की छाया में ठहर कर आराम करता है अधर्म द्रव्य उसी तरह से स्थिर दशा प्राप्त करने में सहायता करता है। आकाश द्रव्य विश्व की समस्त वस्तुओं को आधार प्रदान करता है। विश्व में जितनी भी वस्तुएं हैं सभी को रहने के लिये स्थान चाहिए और इसकी पूर्ति आकाश द्रव्य करता है। काल द्रव्य वस्तुओं की विभिन्न स्थिति का बोध कराता है। वर्तमान, भूत और भविष्य ये तीन काल माने गये हैं। इन छह द्रव्यों में से पाँच–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश को क्रमशः जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा आकाशास्तिकाय के नाम से भी जाना जाता है। अस्तिकाय का अर्थ होता है प्रदेशयुक्त। ये पाँचों द्रव्य प्रदेशों से युक्त होते हैं। काल एक प्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय की कोटि में नहीं आता है।

पुद्गल के दो रूप हैं—अणु और स्कन्ध। अणु सबसे छोटा भाग है जबकि स्कन्ध अणुओं से मिलकर बनता है। संसार की सभी भौतिक वस्तुओं का निर्माण अणु और स्कन्ध से होता है। अणु संघात (स्कन्ध) के द्वारा ही शरीर, मन, प्राण आदि की सृष्टि होती है। जीव जो शुद्ध चेतन स्वरूप है जब इन्हीं स्कन्धों से घिर जाता है तब शरीर, मन, प्राण आदि में क्रिया दिखलाई पड़ती है। जीव और पुद्गल के इस संयोग को कर्मबन्ध के नाम से जाना जाता है। यही कारण है कि जीव के दो प्रकार माने गए हैं—मुक्त जीव और संसारी जीव। कर्मबन्ध से युक्त जीव संसारी तथा कर्मबन्ध से मुक्त जीव मुक्त-जीव कहलाते हैं। संसार में जो विविधता है वह कर्मबन्ध के कारण है तथा सृष्टि छह द्रव्यों से मिलकर बनी है।

**बौद्ध** : बौद्ध दर्शन में सृष्टि प्रक्रिया को समझाने के लिए कारण-कार्य सिद्धान्त का विवेचन किया गया है। भगवान बुद्ध भिक्षुओं को बार-बार यह संदेश देते थे कि किसी कारण के बिना किसी घटना का आविर्भाव नहीं हो सकता। कारण के द्वारा घटना का घटित होना किसी कार्यशील प्राणी का कार्य नहीं माना जा सकता बल्कि वह स्वयं घटित होता है। किसी वस्तु की उत्पत्ति के लिये सामग्री का होना आवश्यक माना गया है। मन, चक्षु, विषय के रूप, आलोक आदि के सहयोग से रूप का ज्ञान हो जाता है, अर्थात् रूप का ज्ञान होने के लिए उपर्युक्त सामग्री आवश्यक है। इस नियम को प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद से कर्मवाद की स्थापना होती है। प्रतीत्यसमुत्पाद के कारण ही बुद्ध परिवर्तनशील दृष्ट धर्मों के अतिरिक्त अदृष्ट स्थायी द्रव्य को नहीं मानते। वे आत्मा को भी नहीं मानते। फिर भी बुद्ध ने पूर्व जन्म को माना है और दीपक की ज्योति के दृष्टान्त के द्वारा इसे समझाने का प्रयत्न किया है। मनुष्य पांच प्रकार के परिवर्तनशील तत्त्वों का संग्रह है जिसे पंचस्कन्ध कहा जाता है—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। मानव दो अवस्थाओं का पुञ्ज है—शारीरिक और

मानसिक । इन दोनों अवस्थाओं को नाम-रूप कहते हैं । स्थूल-पुञ्ज को रूप कहा जाता है जबकि सूक्ष्म-पुञ्ज नाम कहलाता है । नाम चार अवस्थाओं में विभक्त है—वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान । पंचस्कन्धों के भिन्न-भिन्न स्कन्ध जीव या सांसारिक वस्तुओं के विभिन्न भागों का निर्माण करते हैं या उसके सूचक हैं । रूप-स्कन्ध आकार, रंग आदि का सूचक है । वेदना-स्कन्ध मनुष्य की सुख-दु:खादि अनुभूतिजन्य अवस्था पर प्रकाश डालता है । संज्ञा-स्कन्ध जीव के नानाविध ज्ञान का परिचायक है । संस्कार-स्कन्ध कर्मजनित प्रवृत्तियों के बारे में बताता है । विज्ञान-स्कन्ध चेतना है । इन्ही पाँचों की समष्टि का नाम मनुष्य है ।

**निष्कर्ष :** विभिन्न भारतीय दर्शनों में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया के विवेचन से यह ध्वनित होता है कि भारतीय दार्शनिक प्रत्यक्ष-प्रयोगसम्मत (empirica ) और भाव जगत में कल्पित (intutional) दोनों ही प्रकार की अवधारणाओं के संवाहक रहे हैं । द्वितीय प्रकार की अवधारणाओं का आधार भी प्रथमतः पहले प्रकार का परिदृश्य (phenomena) ही है । आज विज्ञान empirical को उसके न्याय्य निष्कर्ष (logical conclusion) तक पहुंचाने की दिशा में प्रयासरत है ।

——

# लुड्विग अल्सडोर्फ (Ludwig Alsdorf)

—डा० (श्रीमती) रानी मजूमदार

जर्मन देश के जिन विद्वानों ने भारतीय साहित्य पर और विशेष रूप से जैन साहित्य पर कार्य किया उन विद्वानों में लुड्विग अल्सडोर्फ का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि उनकी रुचि प्रमुख रूप से आधुनिक भारत के अध्ययन में और उसकी समस्याओं के अध्ययन में थी, परन्तु जैन साहित्य के क्षेत्र में भी जो योगदान अल्सडोर्फ ने किया वह प्रामाणिक रूप से विद्वत्जैन समाज में चिरस्मरणीय रहेगा।

अल्सडोर्फ का जन्म जर्मनी के लाउफेरस्वाइलर (राइनलैण्ड) नगर में ८ अगस्त, १९०४ ई०, को हुआ था। उन्होंने भारतीय तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, अरबी तथा फारसी आदि विभिन्न विषयो का जर्मनी में ही हाइड्लबर्ग तथा हम्बुर्ग विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया था। तत्पश्चात् उन्होंने हम्बुर्ग विश्वविद्यालय से ही सन् १९२८ में जैन ग्रन्थ **कुमारपालप्रतिबोध** पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अक्टूबर सन् १९३० से मई १९३२ तक अल्सडोर्फ इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जर्मन और फ्रेंच (फ्रांसीसी) भाषाओं के प्रवक्ता रहे। परन्तु साथ ही उन्होंने अपना संस्कृत का अध्ययन भी जारी रखा। उनके अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र प्रारम्भ से ही अपभ्रंश रहा। सन् १९३३ में उन्होंने पिशल के Materials For Understanding Apabhramsa पर एक निबन्ध प्रकाशित करवाया। अपभ्रंश पर अध्ययनरत रहते हुए उन्होंने सन् १९३५ में **हरिवंशपुराण** पर शोधकार्य किया। उनके शोध-प्रबन्ध का नाम था Harivamsa Purana, A Passage from the Apabhramsa World History Tisathimahapurisagunalamkara। सन् १९३८ तक अल्सडोर्फ जर्मनी में बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्यापन करते रहे।

सन् १९३७ में उनका Apabhramsa Studien नामक एक और निबन्ध प्रकाशित हुआ ।

अल्सडोर्फ ने सन् १९४० में Indien नामक पुस्तक का प्रकाशन किया जो ब्रिटिश इण्डिया और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्धित थी । सन् १९४१ में जिस समय स्वतन्त्रता सेनानी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जर्मनी गए थे उस समय वहाँ एक विशिष्ट भारतीय सेवा विभाग की स्थापना हुई थी । उसी संस्थान के विदेशी विभाग में अल्सडोर्फ सन् १९४१ से १९४५ तक कार्यरत रहे । सन् १९४२ में अल्सडोर्फ ने Deutschindische Geistes-beziehungen भारत तथा जर्मनी के सांस्कृतिक सम्बन्धों पर प्रकाशित की । सन् १९४३ में उनकी पुस्तक Indien Uud Ceylon प्रकाशित हुई जो कि भारत और श्रीलंका के भूगोल से सम्बन्धित है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अल्सडोर्फ सन् १९५० में हम्बुर्ग विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या के प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए और इसी पद पर कार्यरत रहते हुए सन् १९७२ में अवकाश ग्रहण किया । परन्तु सन् १९७८ तक वे अध्यापन कार्य करते रहे । इसी समय वे Critical Pali Dictionary के प्रमुख सम्पादक नियुक्त हुए ।

अल्सडोर्फ के गुरु प्रोफेसर ल्यूडर्स ने 'वैदिक देवता—वरुण' नामक एक पुस्तक लिखी । दुर्भाग्यवश उस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि विश्वयुद्ध में नष्ट हो गई । १९५१ से १९५९ तक अल्सडोर्फ उसी ग्रन्थ पर कार्य करते रहे, और अपने प्रयत्नों एवं अथक परिश्रम से इस मूल ग्रन्थ का संरक्षण करने में सफल हुए और उसे दो भागों में प्रकाशित भी करवाया ।

अल्सडोर्फ के अनेक लेख सन् १९७४ में ग्लासनाप फाउण्डेशन ने दसवें भाग Kleine Schriften में प्रकाशित करवाए । इसमें अल्सडोर्फ के सभी लेख और उनकी सूची भी उपलब्ध है जिससे यह सहज स्पष्ट होता है कि अल्सडोर्फ की भारतीय विद्या के प्रायः

सभी क्षेत्रों जैसे वेद, अशोक के अभिलेख, बौद्ध साहित्य और जातक कथाओं तथा जैन साहित्य आदि में प्रगाढ़ रुचि थी और इन सभी का इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। इनके अतिरिक्त अल्सडोर्फ ने १९७४ में छन्द शास्त्र से सम्बन्धित The Pratyayas : Indian Contribution to Combinatorics नामक लेख भी जर्मन भाषा में लिखा था। इस लेख का जर्मन से आंग्ल भाषा में अनुवाद प्रोफेसर श्रीरामुल राजेश्वर शर्मा (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) ने किया था जो Indian Journal of History of Science, १९९१, (पृ० १७–६१) में प्रकाशित हुआ है।

जिस समय अल्सडोर्फ **हरिवंश पुराण** पर शोध कार्य कर रहे थे उस समय उन्होंने एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ **वसुदेवहिण्डी** की खोज की। **वसुदेवहिण्डी** जैन कथा-साहित्य से सम्बन्धित सबसे प्राचीन (लगभग पाँचवीं शताब्दी ई० का) ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अब दो खण्डों में उपलब्ध है। प्रथम खण्ड के रचयिता संघदास गणि वाचक हैं और दूसरे खण्ड की रचना धर्मसेन गणि ने की। **वसुदेवहिण्डी** गुणाढ्य द्वारा पैशाची भाषा में निबद्ध **बृहत्कथा** का प्राचीनतम उपलब्ध संस्करण है जो महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा गया है। **वसुदेवहिण्डी** में वसुदेव के भ्रमण (हिण्डी) तथा उनके सौ विवाहों की कथा का विस्तृत वर्णन है। साथ ही, इसमें विभिन्न कथाओं तथा उपकथाओं के माध्यम से जैन-धर्म के सिद्धान्तों का उल्लेख भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। अल्सडोर्फ ने **वसुदेवहिण्डी** पर कुछ लेख भी लिखे परन्तु दुर्भाग्यवश वे सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन अपने जीवन काल में न कर सके।

अल्सडोर्फ के जो लेख Kliene Schriften में संकलित हैं उनमें जैन कथा-साहित्य तथा जैन प्राकृत पर लिखे गये लेखों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. The Vasudevahimdi, a Specimen of Archaic Jain Maharastri, BSOAS. 8, 1935–1937, pp. 319–33

2. Zur Geschichte der Jaina Kosmographie und Mythologie, ZDMG 92, 1938, pp. 464–93

3. Eine Neue Version der Verlorenen Brhatkathades Gunadhya, Attidel XIX Congresso Internazionale degli Orientalist, Rom 1938, pp. 344–49

4. A New Version of the Agadadatta Story, NIA 1, 1938, pp. 281–99

5. Zur Apabhramsa– Universalgeschichte Puspadantas, OLZ 42, 1939, pp. 593–611

6. Further Contributions to the History of Jaina Cosmography and Mythology, NIA 9, 1947, pp. 105–28

7. Nues aus alten Jaina bibliotheken. In : Beitrage zur Indischen Philologie und Altertumskunde. Walter Schubring zum 70 Geburstag dargabracht von der deutschen Indologie. (Alt–und Neu–Indische Studien. 7) Hamburg 1951, pp. 59–65

8. Der Vedha in der Vasudevahimde. In : Asiatica. Festaschrift Friedrich Weller Zum 65. Geburstag gewidmet von Seinen Freunden, Kollegen Und Schulern, Leipzig 1954, pp. 1–11

9. Vantam apatam. In: Suniti Kumar Chatterji Jubilee Volume. Presented on the occasion of his Sixty - fifth Birthday (26th November, 1955). Poona 1955. IL 16, 1955, pp. 21–28.

10. The Story of Citta and Sambhuta. In : Felicitation Volume presented to Prof. S. K. Belvelkar, Ed. by Dr. S. Radhakrishnan, Dr. S. K. De (U.a.). Benaras 1957, pp. 202–08

11. Itthiparinna : A Chapter of Jain Monastic Poetry, edited as a contribution to Indian

Prosody. IIJ. 2, 1958, pp. 249–70

12. Namipavijja : Contributions to the Study of a Jaina Canonical Legend. In : Indological Studies in Honor of W. Norman Brown, Ed. by E. Bender, New Haven 1962, pp. 8–17

13. Uttarajjhaya Studies. IIJ, 6, 1962, pp. 110–36

14. What were the contents of Drstivada ? In : German Scholars on India: Contributions to Indian Studies, edited by the Cultural Department of the Embassy of the Federal Republic of Germany, New Delhi, Vol I, Benares 1973, pp. 1–5

15. **Niksepa**—A Jain Contribution to Scholastic Methodology. JOI 22, 1973, pp. 455–63

अल्सडोर्फ ने बारह बार भारत की यात्रा की। वे सन् १९७८ में श्रीलंका गए। वहाँ से जर्मनी लौटने पर एक विषैले साँप के काटने से २५ मार्च, १९७८, को उनकी मृत्यु हो गई।

आजीवन भारतीय साहित्य पर और विशेष रूप से जैन साहित्य पर अपने इस बहुमूल्य योगदान के कारण अल्सडोर्फ के प्रति भारत का विद्वत्समाज चिरऋणी रहेगा।

# गंगा : आचार्य जिनसेन की दृष्टि में

—डा० (कु०) मालती जैन

गंगा मात्र एक नदी नहीं है अपितु वह भारतीय संस्कृति एवं भारतीय अस्मिता का जीवन्त प्रतीक है। प्रत्येक भारतीय के लिए यह गर्व का विषय है कि वह उस देश का वासी है जिस देश में गंगा बहती है। हिमालय से निकलकर धरती पर आकर गंगा ने केवल राजा सगर के ही मृतप्रायः पुत्रों को जीवन दान नहीं दिया, आज भी वह प्रत्येक भारतवासी की जीवनधात्री है। धर्मनिष्ठ पुरुषों के लिये वह गंगा मैया है जो अमृत के समान पेयजल से उनका पोषण करती है और पतिव्रता स्त्रियों के लिए वह अखण्ड सौभाग्य प्रदायिनी मां है। गंगा भारतीय गृहस्थ के संस्कारों से जुड़ी हुई है। मुण्डन, यज्ञोपवीत, वानप्रस्थ, अन्त्येष्टि—ये सभी संस्कार गंगा के हीं पावन तट पर शुभ माने जाते हैं। भारतीय जन-जीवन से जन्म से मरण तक जुड़ी पतित पावनी गंगा कवियों और लेखकों के साहित्य सृजन की भी प्रेरणा रही है।

**अमरकोश** में गंगा के विष्णुपदी, जह्नुतनया, सुरनिम्नगा, भागीरथी, त्रिपथगा, त्रिस्रोतस् और भीष्मस् नाम भी मिलते हैं। हिन्दु पुराणों में इसकी उत्पत्ति विष्णु के चरणों और शिवजी की जटाओं से होने, इसके जह्नु की पुत्री (जाह्नवी) होने तथा राजा भगीरथ के प्रयत्न (तपस्या) से इसके धरती पर अवतरण की कथाएं मिलती हैं। जैन अनुश्रुति में गंगा की उत्पत्ति की कथा ब्राह्मणीय पौराणिक वाङ्मय से किंचित् भिन्न है।

उमास्वामी विरचित **तत्त्वार्थ सूत्र** (३–११, १२, १४, १५, २०) में गंगा नदी की उत्पत्ति सुवर्ण के समान रंग वाले हिमवन् पर्वत पर स्थित एक हजार योजन लम्बे, पाँच सौ योजन विस्तार वाले तथा दश योजन गहरे पद्म नामक सरोवर से मानी गई है। **आदि पुराण** के प्रणेता आचार्य जिनसेन (९वीं शताब्दी ई०) इतनी

विशाल एवं मनोहारी गंगा नदी के प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत हैं और वह भी इसकी उत्पत्ति पद्म सरोवर से मानते हैं। आदि पुराण के भाग २ के पर्व २६ में चक्रवर्ती भरत के दिग्विजय वर्णन के प्रसंग में श्लोक १२९ से १५० में जिनसेन ने अपनी कल्पना की तूलिका से गंगा नदी के ऐसे मनोरम चित्र उकेरे हैं कि पाठक, गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में, "केसव कहि न जाई का कहिए देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए" की स्थिति में पहुँच जाता है।

उन्होंने विविध उपमानों के माध्यम से गंगा नदी के स्वरूप एवं सौन्दर्य का समास शैली में सुन्दर वर्णन किया है। गंगा नदी और भरत की कीर्ति, राज्यलक्ष्मी और सेना की समानता का सांगोपांग विवेचन उनके वाक्चातुर्य और अर्थ-गांभीर्य का परिचायक है, यथा—

हिमवद्धिधृतां पूज्यां सतामासिन्धुगामिनीम् ।
शुचिप्रवाहामाकल्पवृत्तिं कीर्तिमिवात्मनः ।। १२९ ।।

भावार्थ—भरत चक्रवर्ती को गंगा नदी अपनी कीर्ति के समान हिमवान (हिमालय) पर्वत से धारण की हुई, पूज्य, समुद्र तक गमन करने वाली, पवित्र, प्रवाहमय और कल्पान्त काल तक टिकने वाली प्रतीत हुई।

गंगा नदी और चक्रवर्ती भरत की विशाल एवं अदम्य सेना का साम्य वर्णन करते हुये कवि कहता है—

विजयार्द्धतटाक्रान्ति कृतश्लाघां सुरहंसम् ।
अभग्नप्रसरां दिव्यां निजामिव पताकिनीम् ।। १४० ।।

भावार्थ—भरत चक्रवर्ती को गंगा अपनी सेना के समान प्रतीत हुई क्योंकि जिस प्रकार उनकी सेना विजयार्द्ध पर्वत के तट पर आक्रमण करने से प्रशंसा को प्राप्त हुई थी उसी प्रकार गंगा नदी भी विजयार्द्ध पर्वत के तट को आक्रान्त करते हुए बही है। जिस

प्रकार उनकी सेना का वेग तेज था उसी प्रकार गंगा नदी का वेग भी तेज है। जिस प्रकार उनकी सेना के फैलाव को कोई रोक नहीं सकता था उसी प्रकार गंगा के फैलाव को कोई रोक नहीं सकता और जिस प्रकार उनकी सेना दिव्य अर्थात् सुन्दर थी उसी प्रकार गंगा नदी भी सुन्दर है।

कवि जिनसेन ने निम्नलिखित श्लोकों में गंगा का एक कामोद्दीपक सुन्दरी के रूप में मानवीकरण भी किया है—

> शकरी प्रेक्षणा मुद्यत्तरङ्ग भ्रविनर्त्तनाम्।
> वनराजी वृट्टच्छाटौपरिधानां वधूमिव ।। १३० ।।
>
> विस्तीर्णजनसंभोग्यैः कूजहंसालिमेखलैः।
> तरंग वसनैः कान्तां पुलिनैछर्जतेरिव ।। १३१ ।।

भावार्थ—भरत को गंगा एक रमणी के रूप में प्रतीत हुई क्योंकि उसमें तैरती मछलियां उसकी आँखें प्रतीत हो रही थीं और उसमें उठती हुई तरंगें (लहरें) उसका भ्रू—नर्तन लग रहा था। तटवर्ती वनशोभा से वह साड़ी परिधान धारण किये वधू की तरह लग रही थी। उसके जनसंभोग्य विस्तीर्ण पुलिन (तट) कान्ता (सुन्दरी) की जांघे, तट पर कल्लोल करते हँस और गुनगुनाते भौरे उसकी मेखला (करधनी) और तरंगें वस्त्र प्रतीत हो रही थीं।

अपने पति समुद्र को रिझाने के लिए इस गंगा सुन्दरी द्वारा किए गये हाव-भाव और अंग-प्रदर्शन भी आचार्य की पैनी दृष्टि से ओझल नहीं रह सके जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है—

> रोमराजीभिवानीलां वनराजीं विवृष्वतीम्।
> तिष्ठमानामिवावर्तव्यक्त नाभिमुदन्वते ।। १३४ ।।

अर्थात्—जो दोनों ओर लगी हुई हरी-भरी वनश्रेणियों के प्रकट करने तथा साफ-साफ दिखाई देने वाली भँवरों से ऐसी जान पड़ती थी मानों किसी स्त्री की तरह अपने समुद्र रूप पति के लिए रोम-राजि और नाभि ही दिखला रही हो।

श्लेष अलंकार के प्रयोग में निपुण जिनसेन ने निम्नलिखित श्लोक में किस कुशलता के साथ गंगा और गाय का साम्य स्थापित किया है, दृष्टव्य है—

समांसमीनां पर्याप्तपयसं धीरनि:स्वनाम् ।
जगतां पावनी मान्यां हसन्तीं गोमतल्लिकाम् ।। १३६ ।।

भावार्थ—यह गंगा नदी किसी उत्तम गाय की हंसी उड़ाती प्रतीत होती थी क्योंकि जिस प्रकार उत्तम गाय समांसमीना अर्थात् प्रतिवर्ष प्रसव करने वाली होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी समांसमीना अर्थात् परिपुष्ट मछलियों से युक्त है, जिस प्रकार उत्तम गाय में पर्याप्त पय अर्थात् दूध होता है उसी प्रकार गंगा में भी पर्याप्त पेय अर्थात् जल है, जिस प्रकार उत्तय गाय गम्भीर शब्द करती है उसी प्रकार गंगा नदी भी गम्भीर कलकल शब्द करती है, तथा जिस प्रकार उत्तम गाय जगत को पवित्र करने वाली है और पूज्य है उसी प्रकार गंगा भी पूज्य है ।

अन्त में आचार्य जिनसेन ने जिनेन्द्र भक्ति से विभोर हो गंगा की कीर्ति की जिनेन्द्र देव की कीर्ति से साङ्गोपांग तुलना शार्दूल-विक्रीडित छन्द में निम्नवत की है—

तामाक्रान्तहरिन्मुखां कृतरजोधूर्ति जगत्पावनी
मासेव्यां द्विजकुंजरैरविरतं संतावविच्छेदिनीम् ।
जैनीं कीर्तिभिवाततामपमलां शश्वज्जनानन्दिनीं
निध्यायन् विवुधापगां निधिपतिः प्रीतिपरामासदत् ।। १५० ।।

अर्थात्—यह गंगा ठीक जिनेन्द्र देव की कीर्ति के समान है क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देव की कीर्ति ने समस्त दिशाओं को व्याप्त किया है उसी प्रकार गंगा नदी ने भी दिशाओं को व्याप्त किया है । जिनेन्द्र भगवान की कीर्त्ति ने जिस प्रकार रज अर्थात् पापों का नाश किया है, उसी प्रकार गंगा नदी ने भी रज अर्थात् धूलि का नाश किया है । जिनेन्द्र भगवान की कीर्त्ति जिस प्रकार

(शेष पृष्ठ २५५ पर)

# गिरनार सिद्ध क्षेत्र—ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

—श्री रामजीत जैन

गुजरात राज्य के सौराष्ट्र मण्डल में स्थित गिरनार पर्वत सुप्रसिद्ध जैन तीर्थ क्षेत्र है। साहित्य में गिरनार के अनेक नाम मिलते हैं : जैसे उज्जन्त, उर्जयन्त, गिरनार, गिरनेर, रैवतक, रेवत। २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ ने यहाँ से निर्वाण प्राप्त किया था। उनके दो अन्य कल्याणक—दीक्षा व केवलज्ञान भी यहीं हुए थे। नेमिनाथ श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे।

**जैन शिलालेख संग्रह,** भाग २, के पृष्ठ ४०८—०९ पर कर्नाटक प्रदेश के शिमोगा तालुक में स्थित कल्लरगड्डू से प्राप्त शक १०४३ (सन् ११२१ ई०) के शिलालेख में उल्लेख है कि—

"हरिवंश केतु नेमीश्वर तीर्थ वर्तिसुत्तगिरे भानु पुट्टिदं भासुर-तेजं विष्णुगुप्तनेम्ब नृपालम् ॥ आ—धराधिनाथं सम्राज्यपददियं कैकोण्डहिच्छत्र - परदोलु सुखमिद्र्दु नेमितीर्थंकर परमदेव - निर्वाण कालदोल एन्द्रध्वज बेम्बं पूजेयं माडे देवेन्द्रनोसेदु।

अनुपमदैरावतमं। मनोनुरागदोले विष्णुगुप्तङ्-गम्।
जिनपूजेयिन्देमुक्तिय। ननर्घ्यमं पडेगुन्दोडुलिदुदु पिरिदे ॥"

अर्थात्—जब नेमीश्वर का तीर्थ चल रहा था, उस समय राजा विष्णुगुप्त का **जन्म** हुआ। वह राजा अहिच्छत्रपुर में राज्य कर रहा था। उसी समय नेमि तीर्थंकर का निर्वाण हुआ। उसने इन्द्र-ध्वज पूजा की। देवेन्द्र ने उसे ऐरावत हाथी दिया।

कर्नाटक प्रदेश में ३री शती ई० में उदय में आये गंग वंश का, इस शिलालेख में, तीर्थंकर ऋषभ के साथ सम्बन्ध निर्दिष्ट करते हुए एक पूर्व पुरुष विष्णुगुप्त का उल्लेख किया गया है जो अहिच्छत्र का राजा था और तीर्थंकर अरिष्टनेमि का भक्त था।

तथापि इस विष्णुगुप्त की ऐतिहासिकता के विषय में इतिहास मौन है। डा० प्राणनाथ विद्यालंकार ने **टाइम्स आफ इण्डिया** (१९

मार्च १९३५) में प्रभासपट्टन से प्राप्त बेबीलोनिया के बादशाह नेबुचडनज्जर के ताम्रपट लेख का अनुवाद इस प्रकार किया है—

"रेवानगर के राज्य का स्वामी, सुजातिका देव नेबुचडनज्जर आया है। वह यदुराज के नगर (द्वारका) में आया है। उसने मन्दिर बनवाया। सूर्य...... देव नेमि कि जो स्वर्ण समान रेवत पर्वत के देव हैं, (उनको) हमेशा के लिये अर्पण किया।"

नेबुचडनज्जर का काल ११४० ई० पू० का माना जाता है, अर्थात् अब से ३००० वर्ष पहले रेबतक पर्वत के स्वामी भगवान नेमिनाथ माने जाते थे। उस पर्वत की ख्याति उन्हीं भगवान नेमिनाथ के कारण थी। उस समय द्वारका में यदुवंशियों का राज्य था और वहाँ पर भगवान नेमिनाथ की अत्यधिक मान्यता थी। इसलिये बेबीलोनिया के बादशाह ने नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया।

जैन वाङ्मय के इतिहास से जुड़ी निम्नलिखित महत्वपूर्ण घटना का गिरनार के साथ सम्बन्ध है—

धरसेनाचार्य सौराष्ट्र (गुजरात काठियावाड़) देश के गिरनार की चन्द्रगुफा में रहते थे। वे आचारांग के पूर्ण ज्ञाता थे। उन्हें इस बात की चिन्ता हुई कि उनके पश्चात् श्रुतज्ञान का लोप हो जायेगा। उस समय (सम्भवतया सन् ६६ ई० पू०) वेण्यातट नगर में दक्षिणापथ के आचार्यों द्वारा एक मुनि सम्मेलन का आयोजन हो रहा था। अतः धरसेनाचार्य ने मुनि-सम्मेलन को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त की। मुनि संघ ने पत्र पढ़कर दो योग्य साधुओं को उनके पास भेजा। आचार्य धरसेन ने उनकी परीक्षा कर शुभ तिथि, नक्षत्र एवं वार में महाकर्म प्रकृति प्राभृत नाम के ग्रन्थ को पढ़ाना प्रारम्भ किया और क्रम से व्याख्यान करते हुए आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी के पूर्वान्ह काल में समाप्त किया। ग्रन्थ समाप्त होने पर आचार्य धरसेन ने उन मुनिराजों का

नाम भूतबलि और पुष्पदन्त रखा। अध्ययन करके वे वहाँ से गुरू की आज्ञा लेकर चले गये और उन्होंने **षट्खण्डागम** की रचना की तथा लिपिबद्ध करके सम्पूर्ण संघ के समक्ष ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को उस शास्त्र की समारोहपूर्वक पूजा की।

गिरनार पर्वत पर उज्जैनी के महाक्षत्रप रुद्रदामन का शक सम्वत् ७२ (सन् १५० ई०) का एक शिलालेख है जिसमें सुदर्शन झील के निर्माण, जीर्णोद्धार आदि का रोचक विवरण दिया गया है। इस झील का निर्माण मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के राष्ट्रिक वैश्य पुष्यगुप्त ने कराया था। मौर्य सम्राट अशोक के लिये यवनराज तुषास्फ ने इसमें नालियाँ निकलवायी और महाक्षत्रप रूद्रदामन ने नागरिकों पर अतिरिक्त कर लगाये बिना अपने कोष से धन लगाकर थोड़े ही समय में पहले से तिगुना बड़ा सेतु बनाया।

गुप्त सम्वत् १३७ (४५८ ई०) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि गुप्त शासन में स्कन्दगुप्त के समय सौराष्ट्र का शासक पर्णदत्त था। उसने अपने पुत्र चक्रपालित को प्रदेश की सुरक्षा का भार सौंप दिया। एक समय राज्य में भीषण वर्षा हुई। इससे रैवतगिरि से निकलने वाली पलाशिनी और सिक्ता नदियों में भयंकर बाढ़ आ गई। इस कारण सुदर्शन झील में जगह-जगह दरार पड़ गई, तट बन्ध टूट गये। बाढ़ जैसी स्थिति होने पर चक्रपालित ने झील का जीर्णोद्धार किया।

मि० बर्गेस की रिपोर्ट से ऐसा विदित होता है कि गिरनार की गुफाओं का निर्माण शाही वंश के राजाओं ने सम्भवतः ईसा की दूसरी शताब्दी के अन्त में जैन साधुओं के लिये कराया था। तथापि कुछ गुफायें इससे भी प्राचीन रहीं जिनमें से एक में आचार्य धरसेन निवास करते थे।

श्री नेमिनाथ मन्दिर के सहन में एक शिलाफलक पर लेख (संवत् १६९२ श्री मूलसंघे श्री हर्षकीर्ति श्री पद्मकीर्ति श्री भुवनकीर्ति

ब्र० अमर सिभाणमनजी पं० वीर जयन्त भारदासदयाला तेषां ९ नेमियात्रा सफलास्तु)" एवं चरण चिन्ह (हर्षकीर्ति जी की पादुका) से विदित होता है कि १६३५ ई० में इन दिगम्बर भट्टारकों ने यहाँ की ९ यात्रायें की थीं और अन्तिम यात्रा में हर्षकीर्ति जी भट्टारक के चरण-चिन्ह विराजमान कराये थे।

——

(पृष्ठ २५१ का शेष)

जगत को पवित्र करती है, उसी प्रकार गंगा नदी भी जगत को पवित्र करती है। जिनेन्द्र भगवान की कीर्त्ति जिस प्रकार द्विज-कुंजर अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के द्वारा सेवित है उसी प्रकार गंगा नदी भी द्विज-कुंजर अर्थात् पक्षियों और हाथियों के द्वारा सेवित है। भगवान की कीर्त्ति जिस प्रकार निरन्तर संसार भ्रमण जन्य सन्ताप को दूर करती है उसी प्रकार गंगा नदी भी सूर्य की किरणों से उत्पन्न सन्ताप को नष्ट करती है। और जिनेन्द्रदेव की कीर्त्ति जिस प्रकार विस्तृत, निर्मल और सदा लोगों को आनन्द देने वाली है उसी प्रकार यह गंगा नदी भी विस्तृत व निर्मल है तथा लोगों को आनन्द देती है। इस प्रकार उस गंगा नदी को देखते हुए निधियों के स्वामी भरत महाराज परम प्रीति को प्राप्त हुए थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि **आदि पुराण** के गंगा वर्णन में प्रकृति के प्रति गहरा अनुराग, सूक्ष्मनिरीक्षण, उच्चकल्पना-शक्ति, अर्थगांभीर्य, वाग्वैदिग्ध्य एवं भाषा पर असाधारण अधिकार जैसी श्लाघनीय काव्यगत विशेषतायें परिलक्षित होती हैं, और ये समस्त काव्यगत उपादान रंगे हैं जिनेन्द्रभक्ति के उस गहरे रंग में जो कभी छूटता नहीं। ★

## चमत्कार या वीतरागता ?

**—प्रा० सौ० लीलावती जैन**

एक धर्मबन्धु ने हमारे पास एक समाचार प्रकाशनार्थ भेजा। महाराष्ट्र में मुक्तागिरी तीर्थ क्षेत्र पर (जहाँ प० पू० आ० विद्यासागरजी के ३ चातुर्मास हुए हैं) एक चमत्कार हुआ। एक १६ वर्षीय कन्या है। रहने वाली नांदगोमुख सावनेर जि० नागपुर की है। नाम वैशाली मधुकर गडेकर है। दो वर्ष पहले आंगन बुहारते समय अचानक उसकी आवाज बन्द हो गयी। गले में कुछ गाँठ सी आयी थी। माता-पिता ने कई डॉक्टरों से इलाज करवाया। कुछ फायदा नहीं हुआ। ६ माह पहले वैशाली को एक सपना आया'। उसमें नाग-फणधारी मूर्ति, मन्दिर, मन्दिर के सामने वृक्ष, इत्यादि दिखायी दिया। मूर्ति उसे बुला रही थी, ऐसा आभास हुआ। उसने यह स्वप्न कथा माता-पिता को लिखकर दिखायी। वहाँ जाने का आग्रह किया। माता-पिता उसकी इच्छा मानकर १२ मई, ९६ को मुक्तागिरी वन्दनार्थ उसे ले गये। २६ नं० की गुफा में भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। दर्शन करते ही वह लड़की भ० पार्श्वनाथ का जय-जयकार करने लगी। उसकी वाचा प्रभु कृपा से अचानक आ जाने से सभी को आश्चर्य हुआ। यह समाचार दैनिक अखबारों में तथा **जैन गजट** में भी प्रकाशित हुआ है। अखबारों में प्रकाशित समाचारों पर लोग सत्य समझकर विश्वास कर लेते है, यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है।

यह समाचार पढ़कर हमें खुशी हुइ कि, 'चलो ! १६ वर्षीय कन्या की आवाज आ गयी तथा उसके जीवन में आयी रुकावट दूर हो गयी। भई ! लड़की जात है, कई कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता, इत्यादि, इत्यादि।' परन्तु अखबारों के समाचार पढ़कर कुछ प्रश्न भी जहन में उछलने लगे। सबसे महत्वपूर्ण विचार यह है कि मूर्ति में चमत्कार ढूँढ़ना चाहिए या वीतरागता ? क्या

चमत्कारों से मूर्ति की वीतरागता में कुछ विशेषता आती है ? चमत्कारी मूर्ति हो सकती है ? अगर है तो नमस्कार करने का क्या कुछ विशेष पुण्यबन्ध होता है ? जिस मूर्ति में चमत्कार न हो तो क्या तुलना में पुण्यबन्ध कम होता है ? क्या उस मूर्ति के प्रति तब अनादर भाव निर्माण होगा ? क्या चमत्कार और वीतरागता में परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है ? क्या जहाँ वीतरागता है वहाँ चमत्कार होता है, या वीतरागता न हो तो नहीं होता ? चमत्कार से क्या सत्य-असत्य का निर्णय हो सकेगा ? क्या सरासर असत्य भी चमत्कार के प्रभाव से सत्य प्रतीत नहीं होगा ? और क्या चमत्कार के अभाव में सत्य भी असत्य प्रतीत नहीं होगा ? क्या प्रभु सपने में आकर बुलाते भी हैं ? क्या पार्श्व प्रभु किसी को आँखें, वाचा इत्यादि दे सकते हैं ? क्या ऐसी आवाज आना कर्मोदय का परिणाम है ? अगर प्रभु की कृपा से वाचा उत्पन्न हो जाती है तो कर्म सिद्धांत का क्या किया जाये ?……इस प्रकार के कई प्रश्न मन के जलाशय में तरंगित होते हैं, और कुछ ऐसे अन्य समाचार व घटनाएँ याद भी आ जाती हैं ।

कुछ वर्षों पहले 'कलिकाल सर्वज्ञ' उपाधि के धारी आचार्य महाराज णमोकार मन्त्र से मन्त्रित पानी देते थे जिससे मूक लोगों की आवाज आ जाती थी, इस प्रकार की चमत्कार की घटनाएँ उनकी चरित्र कथाओं में प्रकाशित हुई थीं । पढ़कर हमारे एक श्वेताम्बर स्नेही आकर पूछताछ करने लगे । उनकी बच्ची बचपन से गूँगी, बहरी थी । सभी डॉक्टरी व मन्त्रतन्त्रादि उपायों से भी वह ठीक नहीं हुई । हमारी सलाह न मानकर वे सम्बन्धित आचार्य श्री के दर्शनार्थ बच्ची को ले गये । चरणों में गिर गये । काफी खर्च भी किया, परन्तु बच्ची ठीक नहीं हुई । आज तक वैसी ही है । अब वे हमारी ओर देखकर कहते हैं, 'दिगम्बर जैन आचार्यों में कोई चमत्कार नहीं होता (मतलब, वे झूठे होते हैं)' अब वे सबको यही कहते हैं । इसमें दोष किसका ? और ऐसी कई घटनाएँ……जैसे,

एक महाराज जी के चरणोदक से अन्धी वृद्धा की आँखें आ गयीं। आहार के लिए आये मुनिराज के केशरी चरण चिन्ह पट्टे पर या फर्श पर अमिट निशान छोड़ गये। या, हाथ ऊपर करते हुए फलाँ-फलाँ महाराज ने पर्जन्य वृष्टि को रोक दिया। ऐसी घटनाएँ हमेशा रस ले-लेकर कही व सुनी जाती हैं।

मुक्तागिरी की यह घटना भी पढ़कर लगा कि ऐसे पीड़ित, त्रस्त, जैन, अजैन लोग मुक्तागिरी के दर्शनार्थ इन भिन्न हेतुओं से दौड़ेंगे। क्षेत्र पर भीड तो बढ़ जायेगी ; परन्तु उन्हें लाभ न मिला तो बाद के परिणाम क्या होंगे ?……

इस घटना की सत्यता के बारे में शंका करने का कोई कारण नहीं है। हमारा भाव तो केवल इतना ही है कि मूर्ति या मुनिराज की वीतरागता की रक्षा हो। यह क्षेत्र चमत्कारी, अतिशय, है या नहीं, इस विवाद में भी हम नहीं पड़ना चाहते। लड़की की वाचा निर्माण की घटना सही है। मेडिकल सायन्स और मनोविज्ञान कहते हैं कि कभी-कभी भावोद्रेक (अर्थात् अत्यन्त आनन्द, दु:ख, भय, इत्यादि) के कारण रक्तनलिकाओं में अटके हुए क्लॉटस् (थक्के) घुल जाते हैं, और रक्त प्रवाहित हो जाता है जो सम्बन्धित यन्त्रणातक पहुँचता है और कार्यक्षमता आरम्भ हो जाती है। यह शरीर-धर्म है, शरीर-विज्ञान है। क्या वीतराग धर्म या वीतराग विज्ञान से इसका अविनाभाव सम्बन्ध हो सकता है ? मूर्तिदर्शन निमित्त अवश्य हो गया है। परन्तु क्या निमित्त कोई भी नहीं हो सकता ? हमारे यहाँ एक निकट सम्बन्धी व्यापारी व्यक्ति को आर्थिक परिस्थिति का ऐसा झटका लगा कि पागल हो गये। परन्तु जब उन्होंने एक जगह लगी भयानक आग देखी तो अपने आप ठीक हो गये। कभी-कभी कई औषधोपचार से भी शरीर या मन के जो रोग दुरुस्त नहीं होते, वे कभी-कभी ऐसे निमित्त से हो जाते हैं। अत: कभी-कभी मानसिक बीमारियों में डॉक्टर ऐसे प्रसंगों की रचना कर कुछ जान-बूझकर बाह्य तरीके से झटके देते हैं। इस ट्रीटमेन्ट से रोगी ठीक भी हो

जाते हैं, परन्तु परिणामों की अनुकूलता व साधन आवश्यक होते हैं। इसमें चमत्कार उस निमित्त में नहीं होता, भावोद्रेक का परिणाम अपेक्षित लाभ दे जाता है—यह ध्यान में लेना आवश्यक है। हम श्रद्धा के पीछे वीतराग मूर्ति में चमत्कार ढूँढ़ते हैं, और इतना ही कर रुकते नही हैं वरन् उन घटनाओं को अखबार में प्रकाशित भी कर देते हैं। परिणाम में वीतरागता का अवमूल्यन ही कर देते हैं। फिर वह मूर्ति के विषय में हो या मुनिराज के सम्बन्ध में हो, सभी जगह मूढ़ श्रद्धा ही कारण है या और कुछ? इसका विचार होना भी आवश्यक है कि ऐसे अतिशय सही हैं या निमित्त? कार्य घटता है तो कारण कुछ होगा ही। और थोड़ा विचार करें कि हमारी दृष्टि ही चमत्कार प्रधान हो तो सत्य-असत्य का निर्णय करना कठिन हो जाता है। क्षमता नहीं रहती। उक्त वैशाली को पुन: डॉक्टर के पास ले जाकर कारणों की जाँच करनी चाहिए। दूसरी बात, जहाँ चमत्कार होता है, वहाँ मूढ़ श्रद्धालुओं को गुणों की अपेक्षा क्या होगी? अगर दुर्गुण भी हो तो उन्हें भी गुण ही समझा जाता है या गौण कर दिया जाता है। तथाकथित चमत्कारी साधुओं के दुर्गुण कोई बताने लगे तो उसे 'मुनि-निंदक' करार दिया जाता है। केवल यही कहकर बात खत्म हो तो भी कोई बात नहीं, परन्तु 'हमारी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची है' कहकर वे उन पर मुकदमें दायर कर कोर्ट में भी घसीट लेते हैं। (अब इन्हें क्या कहें भला?)

इस घटना में कथित चमत्कार को लेकर हमने कुछ विद्वानों से व एक मुनिराज से चर्चा की कि 'चमत्कार और सत्य गुण में परस्पर क्या सम्बन्ध है? क्या चमत्कार सही होता है? इ० इ०……' उनका जवाब था, 'पुण्यानुबन्धी पुण्यात्मा अगर है तो गुण के साथ चमत्कार भी दिखता है; पापानुबन्धी पुण्यात्मा में चमत्कार तो होता है, परन्तु सत्यता नहीं होती; पुण्यानुबन्धी पापात्मा में सत्य होता है, परन्तु चमत्कार नहीं होता; पापानुबन्धी पापात्मा में

(शेष पृष्ठ २६० पर)

## विचार-विन्दु

### क्या वेदों में पशु हिंसा का उल्लेख है ?

**–आचार्य शिवचन्द्र शर्मा**

इस तथ्य से तो प्रायः सभी विद्वज्जन भलीभाँति परिचित हैं कि वैदिक विचारधारा में यज्ञ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। यज्ञ के प्रति इस लगाव के कारण ही कालान्तर में वेद मन्त्रों का आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ गौण होता चला गया तथा यज्ञपरक अर्थ ही को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। इस कार्य में सायणाचार्य का अधिक हाथ रहा। उसने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" की आड़ में हिंसा परक अर्थ करके पशु बलि और नर बलि तक को प्रोत्साहित किया। सायणाचार्य द्रविड़ ब्राह्मण थे, जो

---

(पृष्ठ २५९ का शेष)

दोनों बातें नहीं होती।' इससे स्पष्ट होता है कि गुणों का व सत्य का चमत्कार से अविनाभाव कोई सम्बन्ध नहीं है। वीतरागता में चमत्कार की आकांक्षा करना वीतराग भावों का अनादर करने जैसा ही है। पर सवाल यह रह जाता है कि पुण्यानुबन्धी, पापानुबन्धी, पुण्यात्मा व पापात्मा को कैसे पहिचानें ? खैर !

जिनको ऐसे तथाकथित चमत्कार के अनुभव आते हैं, उनको अपनी श्रद्धाओं का शोधन करना चाहिए। समाज से और विद्वानों से प्रार्थना है कि अपने तीर्थ क्षेत्रों की पवित्रता व मूर्तियों की वीतरागता को अबाधित रखने के लिए इस प्रकार की घटनाओं में शोधन करें। घटनायें सत्य हों तो उनके पीछे छिपे मूल चमत्कारों का उद्गम/स्रोत अर्थात् कार्यकारक निमित्त कहाँ हैं, इसकी खोज करना आवश्यक है। हमारा भाव किसी मूर्ति के अविनय का नहीं है, और ना ही किन्हीं श्रद्धालुओं की भावनाओं का उपहास करने का है। कृपया सम्बन्धित लोग विपर्यास न करें और घटना के मूल में सत्य ढूँढ़ने का प्रयास करें। पाठकगण भी इस पर अपनी प्रतिक्रिया भेजें। ★

विजयनगर के बुक्क नामक राजा (१४ वीं शती ई०) के यहाँ दीवान पद पर नियुक्त थे।

इनके बाद दक्षिण ही के उव्वट ने सायणाचार्य ही के आधार पर **यजुर्वेद** का भाष्य किया। सायण और उव्वट का अनुसरण करते हुए महीधर ने अपना भाष्य प्रस्तुत किया। अपने भाष्य के प्रारम्भ में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि "भाष्यं विलोक्यौवट माधवीयम्" अर्थात्, मैने सायण और उव्वट के भाष्य को देखकर ही यह भाष्य लिखा है। सायण की विचारधारा का अनुगमन करते हुए उव्वट और महीधर ने वेदों को अपौरुषेय मानकर भी उनमें पशु हिंसा जैसी अनर्थकारी बातों को अंगीकार कर लिया।

**अथर्ववेद** के नवम काण्ड के चतुर्थ सूक्त में वृषभ की महिमा का उल्लेख है। आलङ्कारिक भाषा के माध्यम से कहा गया है कि यदि किसी के यहाँ उत्तम कोटि का बछड़ा पैदा हो जाए, तो उस बछड़े को राज्य के लिए दे देना चाहिए, जिससे नगर की गौओं से अच्छी सन्तान उत्पन्न हो सके। वृषभ को गौओं का पति और बछड़े-बछड़ियों का पिता कहा गया है (पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम्)। यहाँ तक कामना की गई है कि यह वृषभ संताम रूपी तन्तु को निरन्तर फैलाता रहे, जिससे हमें निरन्तर घी-दूध मिलता रहे। लेकिन सायण ने वृषभ महिमा से परिपूर्ण इतने उपयोगी सूक्त के वास्तविक अर्थ को तिलाञ्जलि देकर इसका भाष्य करते हुए लिखा कि ब्राह्मण बैल को मारकर उसके मांस से भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए आहुति देता है (ब्राह्मणो वृषभं हत्वा तन्मांसं भिन्नभिन्न देवताभ्यो जुहोति)। अब आप ही सोचें कि जिस सूक्त में बैल की प्रशंसा करते हुए उसके संरक्षण पर और उसके द्वारा गौवंश की वृद्धि पर बल दिया गया हो, ऐसे उपयोगी सूक्त का सायण द्वारा किया गया यह अर्थ कहाँ तक औचित्यपूर्ण है? उसकी बलि देकर उससे गौवंशवृद्धि कैसे सम्भव है?

शब्द के साथ उसके अर्थ को और अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये शब्द को पूरी तरह समझना सच्चे साहित्यकार का सारस्वत धर्म

है। जिस साहित्यकार ने शब्द की आत्मोद्भूत छवि को और उस छवि के प्रभामण्डल को नहीं देखा, उसे साहित्यकार संज्ञा देना ही व्यर्थ है, न उसे शब्दार्थ ज्ञाता ही कहा जा सकता है। वेदों में यज्ञवाची 'अघ्वर' शब्द का प्रयोग सैकड़ों जगह हुआ है। इस शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए आचार्य यास्क ने **निरुक्त** में लिखा है– "अघ्वर इति यज्ञ नाम, घ्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः", अर्थात्, अघ्वर का अर्थ है हिंसा रहित कर्म। अतः यज्ञ में पशुवध होने से अघ्वर शब्द सार्थक नहीं हो सकता।

इसी प्रकार वेदों में अनेक जगह प्रयुक्त 'संज्ञपन' शब्द है। सं पूर्वक ज्ञा धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर यह शब्द बनता है, जिसका अर्थ ज्ञान देना-दिलाना या प्रेम कराना होता है। "संज्ञपनं वो मनसो अथो संज्ञपनं हृदः। अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः।" अर्थात् 'तुम्हारे हृदयों में प्रेम हो, मनों में मिलकर ज्ञान पैदा हो। ईश्वर के नाम पर किये गये श्रम से मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्राप्त कराता हूँ।' लेकिन विकृत भाष्यकारों ने 'संज्ञपन' का अर्थ अग्नीषोम के प्रकरण में 'बकरे का काटना' मान लिया जो कि सर्वथा अशुद्ध है। यदि प्रकरण के आधार पर ही इसका अर्थ किया जाये, तो भी यह अर्थ नहीं निकलता। पशु संज्ञपन के बाद "वाचं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि वाक् ते आप्यायताम्" जैसे शब्दों का उल्लेख है, जिसका अर्थ है कि मैं तेरी वाणी को व चरित्र को सुधारता हूँ। बकरे को काटने से चरित्र थोड़े ही सुधरेगा ?

**यजुर्वेद** २४–२९ में 'आलभते' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो आङ् पूर्वक लभ् धातु से सिद्ध होता है और इसका अर्थ स्पर्श करना या प्राप्त करना है। यज्ञ में पशु हिंसा के समर्थक भाष्यकारों ने "प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते" जैसे वेद प्रयुक्त वाक्यों का भी हिंसापरक अर्थ कर दिया, जो कि सर्वथा अशुद्ध है। इसका वास्तविक अर्थ राजा के लिए वीर पुरुषों तथा हाथियों को प्राप्त करना है।

इसी तरह वेदों में प्रयुक्त एक शब्द है 'अवदान' जो 'डुदाञ् दाने' या 'देञ् रक्षणे' से बनता है, लेकिन कुछ आधुनिक मीमांसको ने इसे 'दो अवखण्डने' से सिद्ध मानकर हिंसापरक अर्थ कर दिया। यह अर्थ औचित्यपूर्ण नहीं है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने इसकी सिद्धि 'देञ् रक्षणे' धातु से स्वीकार की है। वे कहते हैं– "तदेनांस्तदवदयते तस्मात् यत् किञ्चनाग्नौ जुह्वति तदवदानं नाम", अर्थात्, आहुतियों को अवदान कहा जाता है, क्योंकि वे रक्षा करती हैं।

वेदों में यज्ञ का पर्यायवाची एक शब्द 'मेध' भी है, यथा-गोमेध, अश्वमेध, अजमेध, पुरुषमेध आदि। इस शब्द के कारण भी कुछ विद्वानों को यज्ञ में पशु हिंसा विधान का भ्रम पैदा हुआ है। वेदों में तो केवल अश्वमेध शब्द आया है न कि पुरुषमेध, अजमेध या गोमेध। मेधृ धातु से मेध शब्द बनता है। मेधृ धातु के तीन अर्थ हैं–शुद्ध बुद्धि को बढ़ाना, मनुष्यों में प्रेम या एकता को बढ़ाना, तथा हिंसा, लेकिन जिस वैदिक धर्म व वैदिक समाज में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान दिया गया हो, वहाँ इस शब्द का हिंसापरक अर्थ मान लेना कहाँ तक औचित्यपूर्ण कहा जा सकता है ?

जहाँ तक अश्वमेध, अजमेध और गोमेध शब्दों का सम्बन्ध है, इनका भी हिंसापरक अर्थ नहीं किया जा सकता। **शतपथ ब्राह्मण** में कहा गया है–"राष्ट्रं वा अश्वमेधः", "वीर्यं वा अश्वः"। यहाँ प्रयुक्त अश्व शब्द राष्ट्र या वीर्य का ही वाचक है। **महाभारत** के शान्ति पर्व में अजमेध के विषय में उल्लेख है–"अजैर्यज्ञेषु यष्टव्या-मिति वै वैदिकी श्रुतिः"। वैदिक साहित्य में जहाँ भी अजों से यज्ञ के विधान का उल्लेख है, वहाँ अज से तात्पर्य धान आदि अन्न ही है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक साहित्य में गोवध को महापाप माना गया है। गोवध करने वाले के लिए प्राण दण्ड तक का विधान है। गौ के लिए वेद में "अघ्न्या" शब्द का प्रयोग भी अनेक जगह हुआ है, जिसका अर्थ 'न मारने योग्य' होता है। वास्तव में यज्ञ के प्रकरण में पशु शब्द

(शेष पृष्ठ २६४ पर)

## मध्य लोक

**—श्री अजित प्रसाद जैन**

हमारे एक स्वाध्याय रसिक वयोवृद्ध (८७ वर्षीय) मित्र श्री सुखमाल चन्द जैन (नई दिल्ली) ने मध्य लोक रचना की जैन आगमिक अवधारणा के विषय पर अपने दीर्घ कालीन चिन्तन का निष्कर्ष निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—

"मध्य लोक के असंख्यात द्वीप-समूह (दुगने-दुगने क्षेत्रफल वाले) जिनमें कोई बारुणी सागर, कोई घ्रतवार सागर, पांचवा समुद्र क्षीर सागर अब तक समस्या बने रहे। अब अन्तिम समय में अनुभव-यामिनी ने चमक दिखा कर बताया है कि मूर्ख यह लोक-रचना geography नहीं है, न यह पुराण इतिहास है। यह सब तो छद्मस्थ आचार्यों की projections हैं जो तत्कालीन शैलियों के अनुसार अपने प्रयोजन (लोक प्रमाण प्रदेश वाले आत्मा के अद्भुत चिच्चमत्कारता की प्रतिष्ठा) की सिद्धि के लिये स्थापित किये गये। यह सब स्थापना-निक्षेप के अन्तर्गत regularised हो जाते हैं, जैसे तीर्थंकरों की धातु-पाषाण की मूर्ति साक्षात् तीर्थंकर की तरह पूज्य हो जाती है।"

---

(पृष्ठ २६३ का शेष)

से सम्बन्धित जितने भी नाम हैं, उनका अभिप्राय अन्न से ही है, पशु से नहीं। अन्न मय पशु के होम करने ही का विधान है। वेदों में तो पशु मात्र की रक्षा के लिये स्पष्ट निर्देश है— "पशून् पाहि", "पशूंस्त्रायस्व", "द्विपादव चतुष्पात् पाहि" (**यजुः**)। पशु रक्षा सम्बन्धी मन्त्रों के साथ-साथ ऐसे मन्त्रों का भी अनेक जगह उल्लेख हैं जिनमें पशुहिंसा का निषेध किया गया है, यथा— "गां मा हिंसीं रदिंति विराजम्" (**यजुः**), "इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्" (**यजुः**)। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में हिंसा का उल्लेख नहीं है और इस उक्ति पर कि **वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति** पर पुर्नविचार अपेक्षित है। ★

मध्य लोक की रचना का उपर्युक्त विश्लेषण भावात्मक है तथा चिन्तनीय है। तस्वीर का एक यह भी पहलू हो सकता है। मध्य लोक से तात्पर्य आज की भाषा में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से है, जिसके ओर-छोर का आज भी कोई पता नहीं। हमारे सौर मण्डल में हमारी पृथ्वी सबसे छोटा ग्रह है तथा अन्य ग्रह इससे आकार में कहीं अधिक बड़े हैं तथा इनमें से कुछ में प्राणियों के अस्तित्व के भी अनुमान व्यक्त किए जा रहे हैं। हमें आकाश में जो नक्षत्र रात्रि में दिखाई पड़ते हैं वे हमारे सूर्य के समान ही विशाल तेज पुञ्ज हैं जिनका अपना-अपना ग्रहों का मण्डल है, जो उनकी परिक्रमा करता रहता है। ये जो नक्षत्र हमें दिखायी पड़ते हैं ये सब हमारी एक आकाश गंगा में है तथा ब्रह्माण्ड में ऐसी और भी आकाश गंगाओं के होने की सम्भावनायें व्यक्त की जा रही हैं। ब्रह्माण्ड के विषय में आज भी हमारा ज्ञान अपूर्ण व अनुमानों पर आधारित है।

आज भी ब्रह्माण्ड उसी प्रकार रहस्यमय है जैसा ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व था। अतः पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में भी जैन अवधारणा को नकार देने का हमारी दृष्टि में कोई औचित्य नहीं है। वर्णन शैली में अतिरंजना हो सकती है, पर सब कुछ कपोल कल्पित है कम से कम हम यह मानने के लिए तैयार नहीं।

हमें ऐसा लगता है कि आगमों में प्रयुक्त कतिपय पारिभाषिक शब्दों के मूल अर्थों को कदाचित् हम आज भूल गये हैं। उदाहरण के लिये, यदि 'द्वीप' के अर्थ ग्रह-नक्षत्र हों तथा 'समुद्र' से तात्पर्य उन ग्रहों-नक्षत्रों को परिवेष्ठित कर रहा उनका 'अन्तरिक्ष', या चुम्बकीय क्षेत्र, हो तो मध्यलोक की असंख्यात द्वीप-समुद्र की जैन आगमिक अवधारणा तथा ब्रह्माण्ड के विषय में हमारे आधुनिक ज्ञान में कोई विशेष असंगति नहीं दृष्टि गोचर होगी। ढाई द्वीप से तात्पर्य अपनी पृथ्वी के अतिरिक्त उन दो ग्रहों से हो सकता है जिनमें जीवन विद्यमान हो तथा जिन तक मानव कभी पहुंच सके।

इसकी भी सम्भावनायें हैं कि जिन मनीषियों ने सृष्टि विद्या सम्बन्धी जैन आगमिक ज्ञान को कण्ठस्थ शैली से सदियों तक

संरक्षित रखा व हम तक पहुंचाया है, वे इस विद्या के विशिष्ट अध्येता न रहे हों तथा हम तक आते-आते इसमें अनेक क्षेपक जुड़ गये हों।

अपनी सुप्रसिद्ध कृति **Cosmology : Old and New** (जो वस्तुत: **तत्त्वार्थ सूत्र** के पंचम अध्याय पर आधुनिक विज्ञान के आलोक में अंग्रेजी में टीका है) में प्रोफेसर जी० आर० जैन ने सृष्टि विज्ञान की जैन आगमिक अवधारणा के मूल तत्त्वों को आधुनिक विज्ञान सम्मत सिद्ध किया है। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को जम्बूद्वीप माना है तथा आर्कटिक क्षेत्र को ही सुमेरु पर्वत की संज्ञा दी है। उन्होंने दो सूर्य तथा दो चन्द्रमाओं की अवधारणा को भी आधुनिक खोजों के प्रकाश में तर्क युक्त सिद्ध किया है। इस प्रकार प्रोफेसर साहब ने जैन सृष्टि विद्या की कई अनबूझ गुत्थियों के रहस्य को सुलझाया है।

जम्बू द्वीप का उल्लेख प्रचुर रूप में वैदिक एवं बौद्ध साहित्य में भी मिलता है किन्तु उनमें वह प्राय: एशिया महाद्वीप के पर्याय-वाची के रूप में प्रयुक्त हुआ है। भू-विज्ञान 'वेत्ताओं का मानना है कि किसी सुदूर अतीत काल में अफ्रीका महाद्वीप भी एशिया-यूरोप महाद्वीप से जुड़ा हुआ ही भूखण्ड था। यदि एशिया-यूरोप-अफ्रीका भूखण्ड को जम्बू-द्वीप माना जाय और उत्तरी-दक्षिणी अमरीका को एक महाद्वीप के रूप में स्वीकार किया जाए (जिसे धातकी-द्वीप कहा जा सकता है), तो फिर अस्ट्रेलिया को भी पुष्करार्ध द्वीप के रूप में माना जा सकता है। एक दृष्टिकोण यहभी हो सकता है।

आज दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर, जैसी एकाधिक संस्थायें जैन जगत में मध्यलोक एवं जम्बूद्वीप की जैन आगमिक अवधारणा पर शोधकार्य में रत हैं। इस विषय पर कतिपय सेमीनार भी आयोजित हुए हैं। पर हमें नहीं लगता कि इन शोध संस्थाओं ने जैन अवधारणा की अनबूझ गुत्थियों को सुलझाने में अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रगति की हो। फिर भी हम आशा करते हैं कि देर-सबेर इन संस्थाओं का शोध परिश्रम सफल होगा। ★

## १. मैं (भटकन से सुलझन तक)

—श्री राजीव कान्त जैन

भ्रम के भाव में
तथ्य के अभाव में
सुख की चाह में
दु:ख की थाह में
रोशनी की राह में
तम के स्याह में, मैं भटकता गया।

जड़ की प्रकृति में
चेतन की गति में
जीवन की अवस्था में
मृत्यु की व्यवस्था में
अस्तित्व के प्रश्न में
प्रश्न के वन में, मैं उलझता गया।

तन के ताप में
धन के जाप में
मन के उद्वेग में
समय के वेग में
मोह के पाश में
माया के रास में, मैं जकड़ता गया।

सौन्दर्य के बोध में
पी के अनुरोध में
यौवन के वैभव में
किलकारते शैशव में
काम के प्रवाह में
दायित्व के निर्वाह में, मैं बहता गया।

धन की चाह में
नाम की वाह में
गरीब की आह में
पड़ोसी की डाह में
मैं के उन्माद में
मन के प्रमाद में, मैं रहता गया।

वय की कगार में
जीवन की पगार में
खर्च सब बाजार में
छूटा सब संसार में
जाना तब ज्ञान में
मैं देह के मकान में, मैं सुलझता गया। ★

## २. बहो, बहो, बहते चलो

—डा० शशि कान्त

ठहरे विचार
ठहरे पानी की तरह गंधाते हैं।

ठहरा जीवन
गतिहीन ढूह बन जाता है।

ठहरी आस्था
हृदय को निस्पन्द कर देती है।

आदि का अन्त स्वभाविक है।
जन्म और मृत्यु दो कूल हैं।
जीवन उनके बीच बहता नीर है।

बहो, बहो, बहते चलो—
चाहे धारा के साथ बहो,
चाहे धारा के विपरीत बहो।

जब तक बहने की क्षमता हो,
तभी तक जीवन की ममता हो। ★★

# जिज्ञासायें एवं समाधान

हमें सुधि पाठकों से जैन वाङ्मय से सम्बन्धित विषयों पर कुछ जिज्ञासायें प्राप्त हुई हैं जिनका हम अपने अल्प ज्ञान के अनुसार समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। किन्तु यदि कोई पाठक अपने विशेष अध्ययन के आधार से इन विषयों पर और विशद प्रकाश डाल सकें तो उनका स्वागत है, हम आभारी होंगे।

## (१) निर्वाण कांड और उसके रचनाकार

**जिज्ञासा** (श्री रामजीत जैन, ग्वालियर)—**निर्वाण काण्ड** के रचयिता का नाम, रचना काल व मूल स्रोत क्या हैं ? तीर्थंकरों के अलावा अन्य मोक्षगामी मुनियों के निर्वाण क्षेत्रों का क्या आधार है ?

**समाधान**—१९ गाथाओं में निबद्ध प्राकृत भाषा के **णिव्वाण काण्ड** के रचयिता के विषय में आज कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। किन्तु अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाते समय भगवान की पूजा में मोक्ष कल्याणक के अर्घ के पूर्व इस स्तोत्र का पाठ करके वर्तमान अवसर्पिणी काल में मोक्ष गए सभी सिद्धो एवं उनकी निर्वाण भूमियों की वन्दना करने की परिपाटी जैन समाज में प्राचीन काल से चली आ रही है। वि० सं० १७४१ (१६८४ ई०) में आगरा के सुश्रावक कवि भइया भगवती दास ने प्राकृत स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद कर दिया जो अत्यधिक लोक प्रिय हुआ और धीरे-धीरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में भाषा के पाठ को ही पढ़ने का प्रचलन हो गया।

**णिव्वाण काण्ड** स्तोत्र में भगवान महावीर के उपरान्त मोक्ष गमन करने वाले गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी व अन्त्यकृत केवली श्रीधर स्वामी तथा उनकी निर्वाण भूमियों का कोई नामोल्लेख न होने से यह अनुमान लगाया जाता है कि इसकी रचना कदाचित् गौतम स्वामी ने ही भगवान का मोक्ष कल्याणक मनाते समय की होगी। यह ध्यातव्य है कि पंचम काल में मोक्षगमन

करने वाले इन महामुनियों की निर्वाण भूमियों के विषय में आज कोई प्राचीन प्रामाणिक उल्लेख उपलब्ध नहीं हैं। तीर्थंकरों के अलावा अन्य केवलियों की निर्वाण भूमियों का उल्लेख श्वेताम्बर आगमों (**भगवती** आदि) में तथा **हरिवंश पुराण, आदि पुराण, उत्तर पुराण** व **पउमचरिउ** आदि पुराण ग्रन्थों में मिलते हैं।

**(२) नंग-अनंग कुमारों की निर्वाण भूमि—सुवर्णगिरि या सोनागिर**

**जिज्ञासा**—(श्री रामजीत जैन, ग्वालियर)—सुवर्णगिरि, सोनागिरि या श्रमण गिरि से नंगानंग कुमार आदि के मोक्ष गमन और चन्द्रप्रभ के समवशरण आगमन का उल्लेख/विवरण किस ग्रन्थ में है, उसके रचयिता कौन हैं और उसका रचनाकाल क्या है ?

**समाधान—णिव्वाण काण्ड** (प्राकृत) की गाथा स० ९ किंचित् पाठ भेद के साथ निम्न प्रकार है—

णंगाणंग कुमारा कोडि पंचद्ध मुनिवारा,
सुव्वण गिरिवर सिहरे, निव्वाणा गया णमो तेसि।

इस गाथा में नंग-अनंग कुमार मुनिराजों की निर्वाण-भूमि सुवर्णगिरि की वन्दना, की गई है। भैया भगवती दास ने इस स्तोत्र के हिन्दी पद्यानुवाद (१६८४ ई०) में इसे सोनागिर लिखा है, जिससे कवि का आशय मध्य प्रदेश के दतिया जिले में स्थित सोनागिर की पहाड़ी से ही है जो कम से कम मध्य काल (१२वीं—१३वीं शताब्दि) से दि० जैन तीर्थ क्षेत्र के रूप में विख्यात चला आ रहा है। पर्वत पर ८६ जिन मन्दिर हैं जिनमें सर्वाधिक प्राचीन शिखर-स्थित भव्य भगबान चन्द्रप्रभ जिनालय है जिसका निर्माण यहाँ भगवान के समवशरण आने की जन श्रुति के प्रकाश में कराया गया प्रतीत होता है। मूलनायक प्रतिमा सम्वत् १३३५ में प्रतिष्ठित कराई हुई है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द जी ने सन् १८२६ ई० में कराया था।

सोनागिर का प्राचीन नाम श्रमणगिरि या समनागिर मिलता है, स्वर्णगिरि नहीं। पहाड़ी की तलहटी में बसे गांव का नाम

'सनावल' है जो श्रमणाचल का ही विकृत रूप मालूम पड़ता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि श्रमणाचल, श्रमणगिरि, समनागिर या सोनागिर प्राचीन काल से जैन श्रमणों (मुनिराजों) की तप-साधना स्थली चला आ रहा है।

इस क्षेत्र के नंग-अनंग कुमार मुनिराजों की निर्वाण भूमि तथा भ० चन्द्रप्रभ के समवशरण आगमन की भूमि प्रचारित करने वाले हमें दो काव्य ग्रन्थ देखने में आए हैं—(१) **श्री स्वर्णाचल महात्म्य**—इसकी रचना वि० सं० १८४५ (१७८८ ई०) शौरीपुर-बटेश्वर के भट्टारक श्री जिनेन्द्र भूषण जी के आदेश से कवि देवदत्त दीक्षित ने की थी। १६ अध्यायों में विभक्त संस्कृत भाषा के इस काव्य ग्रन्थ में कवि ने सर्वप्रथम स्वर्णाचल की भौगोलिक स्थिति बुन्देलों के देश (अपरनाम, बद्र देश) में बताते हुए चन्द्रप्रभ भगवान के तीर्थ में हुए नंग-अनंग कुमार मुनिराजों की कथा, पर्वत पर भ० चन्द्रप्रभ के समवशरण आने का तथा इस क्षेत्र की वन्दना से प्राप्त होने वाले पुण्य लाभ का वर्णन बड़ी रोचक परम्परागत ब्राह्मण शैली में किया है। (२) दूसरा काव्य ग्रन्थ **सोनागिर शतक** है जिसकी रचना पं० छोटे लाल बरैया (उज्जैन निवासी) ने सन् १९६३ ई० में की थी। इसमें खड़ी बोली हिन्दी के १०० कवित्तों में इस गिरिराज की विस्तार से परिक्रमा-बन्दना का वर्णन किया गया है। इसमें सोना-गिर का दूसरा नाम 'स्वर्णाचल' भी दिया गया है।

नंग व अनंग कुमारों की कथा तो **चन्द्रप्रभ चरित** तथा **उत्तर पुराण** में भी मिलती है पर उनकी निर्वाण भूमि दतिया जिला स्थित सोनागिर है, इसके विषय में हमें सन्देह है क्योंकि सोनागिर का नाम कभी सुवर्णगिरि नहीं रहा। इन मुनिराजों की निर्वाण भूमि तथा चन्द्रप्रभ भगवान के समवशरण आगमन की स्थली राज-गृह का सुवर्णगिरि पर्वत अधिक विश्वसनीय लगता है। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने भी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक **जैन साहित्य और इतिहास** (पृष्ठ ४३६–३९) में यही अभिमत व्यक्त किया है।

## (३) तीर्थंकरों की आयु, नाम

**जिज्ञासा**–(श्री शान्तिलाल के० शहा, सांगली)–

(१) सब तीर्थंकरों की आयु साढ़े तीन करोड़ वर्ष होती है जबकि मानव उत्पत्ति का इतिहास ३५ लाख वर्ष पूर्व तक ही जाता है, इसका मेल कैसे बैठता है ?

(२) १८ तीर्थंकरों के आगे नाथ लगा है। अपवाद स्वरूप प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, छठे पद्मप्रभ, आठवें चन्द्रप्रभ, नवें पुष्पदन्त, १२वें वासुपूज्य और २४वें महावीर स्वामी हैं। ऐसा क्यों ?

(३) भगवान ऋषभदेव की आयु ८४ लाख पूर्व वर्ष कही गई है। इधर की गई शोध-खोज में जैन विद्या के अध्येताओं ने यह प्रतिपादित किया है कि भगवान ऋषभदेव का उल्लेख वेदों में किया गया है और यह कि ऋषभ ही शिव भी हैं। वेदों का रचनाकाल ८०००–१०,००० वर्ष से पहले प्राच्च विद्या के विद्वानों द्वारा सूचित नहीं किया जाता। इसकी संगति कैसे बैठती है ?

**समाधान**

(१) जैन धर्म की अवधारणा में तीन लोक (व उसके अन्तर्गत मध्य लोक तथा उसके असंख्यात द्वीप-समुद्रों के केन्द्र में जम्बू द्वीप) की रचना अनादि निधन मानी गई है। उसमें मानव तथा अन्य ८४ लाख योनियों के जीवों का अस्तित्व भी अनादि माना गया है। घड़ी की सूई के समान घूमने वाले पूरे एक काल-चक्र की अवधि एक कल्प अथवा २० कोड़ा-कोड़ी सागर मानी गई है। १० सागर वर्ष के वर्तमान अवसर्पिणी अर्द्ध काल चक्र का ९/१० भाग भोग भूमि के प्रथम तीन कालों में ही बीता है। शेष १/१० भाग में चौथा, पांचवा व छठा काल आते हैं जिनमें कर्म भूमि का प्रवर्तन होता है और जो सभ्यता की प्रथम किरण फूटने के साथ सामान्यतया प्रारम्भ होती है। चौथे काल का परिमाण ४२००० वर्ष कम एक सागर है तथा इसमें ही तीर्थंकरों का जन्म होता है और मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है। [इस समय पांचवें काल के १८ १/२ हजार तथा

छठे काल के २१००० वर्ष शेष हैं ।] इस शास्वत नियम के अपवाद स्वरूप वर्त्तमान हुंडा अवसर्पिणी अर्द्ध काल चक्र के तृतीय काल के अन्तिम चरण में ही सभ्यता के अंकुर फूट गये थे तथा प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का प्रादुर्भाव हुआ था जिन्होंने अपने दीर्घ जीवन काल में कृषि, मसि, असि, पशुपालन आदि विद्याओं का सूत्रपात किया तथा वन्य जीवन को छोड़ कर ग्राम-बस्ती बना कर जीवन यापन करना सिखाया तथा अपने जीवन के अन्तिम चरण (१/८४वें भाग) में गृह त्याग कर तप-साधना से केवलज्ञान प्राप्त किया और धर्म चक्र का प्रवर्तन किया । कल्प काल-गणना की एक ऐसी महा-इकाई है जिसको संख्या में व्यक्त करना सम्भव नहीं है । जैनेतर पुराणों में कल्प को भी संख्यात माना गया है तथा उसका परिमाण चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष परिगणित किया गया है ।

भगवान ऋषभदेव की आयु ८४ लाख पूर्व वर्ष कही गई है तथा एक पूर्व ८४ लाख × ८४ लाख वर्ष का होता है । बोल-चाल की भाषा में यह आयु भी असंख्यात वर्षों की कहलाएगी । अन्य २३ तीर्थंकरों की आयु का योग भी लगभग इतना ही होगा । तीर्थंकरों की आयु की दीर्घ अवधि को अवसर्पिणी काल अवधि की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में ही आकलित किया जाना उचित होगा । हमारी समझ में पुराणकारों का आशय केवल यह बताना रहा है कि प्रारम्भिक काल में मनुष्य जब पूर्णतया प्रकृति की गोद में रहते थे वे बड़े दीर्घ जीवी थे तथा सभ्यता के विकास के साथ जीवन यापन शैली भी कृत्रिम होती गई जिससे मनुष्य की आयु में भी क्रमिक ह्रास हुआ है ।

मानव अस्तित्व के प्रारम्भिक काल में दीर्घ आयु होना सभी धर्म ग्रन्थों में माना गया है । वैदिक ऋषियों की आयु सहस्रों वर्षों की मानी गई है । **बाइबिल** में आदम की आयु ९३० वर्ष बताई गई है तथा उनकी २०वीं पीढ़ी में हुए हजरत इब्राहिम की आयु केवल २२० वर्ष कही गई है । यह अवधारणा भी क्रमिक ह्रास को ही दर्शाती है । **बाइबिल** की भाषा में ही कहें तो भगवान ऋषभदेव

की आयु ८४० वर्ष भी कही जा सकती है जबकि भ० पार्श्वनाथ की १०० वर्ष तथा भ० महावीर की ७२ वर्ष सर्वविदित है।

यह जो मानव उत्पत्ति का इतिहास ३५ लाख वर्ष पूर्व तक जाता हुआ माना जाता है, वह भी बहुत कुछ अनुमानों पर आधारित है। पिछले ५० वर्षों में ये अनुमान कई बार बदले हैं; आगे नहीं बदलेंगे इसे कोई नहीं कह सकता। अभी गत १५–१७ नवम्बर, १९९६ को सम्पन्न हुए बीरबल साहनी पुरा-वनस्पति विज्ञान संस्थान, लखनऊ के त्रिदिवसीय स्वर्ण जयन्ति सम्मेलन में सुप्रसिद्ध भूगर्भ वैज्ञानिक फ़िज़िक्स रिसर्च लेबोरेटरी अहमदाबाद के प्रा० एन० भण्डारे ने जानकारी दी कि "बीते **५७ करोड़ वर्षों के दरम्यान** इस पृथ्वी पर कम से कम पांच बार महा विनाश की घटना हो चुकी है। इन प्राकृतिक घटनाओं के चलते कई जीव-जन्तु विलुप्त हो गए। सर्वाधिक भयंकर घटनायें २५ करोड़ वर्ष व ६ १/२ करोड़ वर्ष पूर्व घटी थीं।" हमारी समझ में मानव के अस्तित्व के इतिहास का भी आकलन पृथ्वी के अस्तित्व के इस इतिहास के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए।

(२) १८ तीर्थंकरों के अतिरिक्त भगवान चन्द्रप्रभ को चन्द्रनाथ भी कहा गया है तथा पुष्पदन्त का दूसरा नाम सुविधिनाथ भी प्रचलित हैं। २४ तीर्थंकरों में से कितने ऐतिहासिक हैं और कितने पौराणिक हैं, यह आज निश्चित रूप से कहना कठिन है। २४ अवतारों, शास्ताओं, तीर्थकों, की अवधारणा अनेक धर्मो में मिलती है। हमारी अपनी सोच है कि भगवान महावीर ने उस समय श्रमण परम्परा में जितने भी सिद्ध हुए और जितने महान् योगियों की अनुश्रुति उपलब्ध थी उन्हें एक लड़ी में पिरोकर प्रस्तुत कर दिया। ऐसा ही एक प्रयास मध्य युग में योगी गोरखनाथ ने किया तथा उनके सिद्ध सम्प्रदाय में आदिनाथी, नेमिनाथी व पारसनाथी अखाड़ों का भी उल्लेख मिलता है। भ० पार्श्वनाथ के पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की क्या शिक्षायें थीं, जैन धर्म एवं दर्शन के विकास में उनका क्या योगदान था, इसके विषय में आज कोई जानकारी

उपलब्ध नहीं है। भ० महावीर ने तो यही कहा कि धर्म शाश्वत है और मैं भी वही कहता हूँ जो पूर्ववर्ती तीर्थंकरों ने कहा था। तीर्थंकर सभी 'निर्ग्रन्थ नाथ' थे। यह रोचक तथ्य है कि भगवान महावीर ने अपने को 'निर्ग्रन्थ नाथ' नहीं कहलाया बल्कि 'निर्ग्रन्थ नाथ पुत्र' ही प्रचारित कराया। यह कुछ इसी प्रकार है जैसे कि ईसा ने अपने को ईश्वर या ईश्वर के अवतार के बजाय 'ईश्वर का पुत्र' कहलाना पसन्द किया।

(३) वेदों की रचना का काल ८०००–१०,००० वर्ष पूर्व मानने तथा वेदों में भगवान ऋषभदेव का उल्लेख होने में असंगति की बात नहीं है। यह तो केवल यह दर्शाता है कि वेदों के रचना काल में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान या भगवान के अवतार के रूप में जन-मानस में प्रतिष्ठित हो चुके थे। भगवान ऋषभदेव तथा भगवान शिव के स्वरूपों में बहुत सी समानतायें हैं जिसके कारण अनेक विद्वानों ने शिव को भगवान ऋषभदेव का ही एक रूप माना है।

**(४) केश लोंच**

**जिज्ञासा**–(श्री जमनालाल जैन, वाराणसी)—

जब मुनिगण साधन के रूप में पिच्छि, कमण्डल, चश्मा, पैन आदि का उपयोग करते हैं, ग्रन्थों का उपयोग करते हैं और इनके प्रति आसक्ति नहीं होती तब केशलोंच के लिए शरीर को इतनी पीड़ा क्यों देते हैं? किसी से भी कहकर इलेक्ट्रानिक रेज़र से केश निकाले जा सकते हैं। क्या शरीर को सताना ऊर्जा का अपव्यय नहीं है? क्या इससे मानसिक शान्ति भंग नहीं होती?

**समाधान**–पिच्छी करुणा का तथा कमण्डल शुचिता का उपकरण हैं। स्वाध्याय के लिये शास्त्र भी रखने की मुनियों को अनुज्ञा है। इन तीन उपकरणों के अतिरिक्त पञ्च महाव्रती मुनियों को बाह्य में भी पूर्ण निष्परिग्रही रहने का उपदेश है। चश्मा चक्षु इन्द्रिय की कार्य क्षमता को बनाये रखने के लिये तथा पैन का रखना माँ सरस्वती की उपासना (आगमों के आधार पर शास्त्र रचना) के लिए रखना भी क्षम्य है। आहार के अतिरिक्त मुनियों को श्रावकों से और कोई अपेक्षा नहीं होती या होनी चाहिये। केश लोंच की

व्यवस्था उस समय की गई थी जब मुनि सामान्यतया वनों में ही अपना अधिकांश समय बिताते थे। क्षौर कर्म के लिए श्रावकों पर निर्भर न रहना पड़े, मुनि पूर्णतया स्वालम्बी रहे तथा शरीर से पूर्ण निर्ममत्व की भावना ही काय-क्लेश की इस क्रिया की पृष्ठ-भूमि में जान पड़ती है। अब जबकि मुनिगण पैन, चश्मे, का उपयोग तो खैर करते ही हैं, कूलर, पंखा, हीटर आदि सुविधाओं का भी उपयोग करने लगे हैं, तथा श्रावकों से और भी अपेक्षायें करने लगे हैं, हम भी श्री जमनालाल जी से सहमत हैं कि इन बदली हुई परिस्थितियों ने केश-लोंच की प्रासंगिकता पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है। आज शरीर-शुद्धि की इस क्रिया को भी तप-प्रदर्शन की वस्तु बना दिया गया है। अब से १६–१७ वर्ष पूर्व हमें कार्तिकी पूर्णिमा के मेले के अवसर पर हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र पर श्वेताम्बर जैन धर्मशाला में एक युवा श्वेताम्बर मुनि श्री के दर्शन हुए थे। वे धर्मशाला के एक कमरे में अकेले एक तख्त पर पद्मासन से बैठे हुए केश लुन्चन कर रहे थे। हमने उनसे पूछा—'महाराज जी केश-लोंच तो समारोहपूर्वक किया जाता है, आप एकान्त में क्यों कर रहे हैं?' मुनि श्री ने उत्तर दिया था—'यह तो शरीर शुद्धि की एक क्रिया है, इसका क्या प्रदर्शन करना ?' हमारी समझ में जब साधु श्रावकों पर अनेक सुविधाओं के लिय निर्भर हो गये हैं, तो कम से कम ऐसे सुविधा-रसिक साधुओं को केश लुन्चन से काय-क्लेश सहन करने की कोई तुक नहीं है और क्षौर-कर्म नापित आदि से कराने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। आखिर बौद्ध भिक्षु तथा अन्य सन्यासी गण भी अपने केश मुण्डित कराते ही हैं। केश-लुंचन क्रिया का प्रदर्शन काय-क्लेश तप का प्रदर्शन है जब कि तप मौन एकान्त **साधना** का विषय है। यह काय-क्लेश का बहुत कुछ उसी प्रकार का प्रदर्शन है जैसा कि मध्य युग में कुछ इसाई सन्यासी अपने पापी शरीर को सार्वजनिक रूप से कोड़ों की मार से लहु-लुहान करके प्रताड़ित करते थे।

**—अजित प्रसाद जैन**

# पर्यावरण और जीवदया

## वृक्ष में भी प्राण हैं

**—श्रीमती गीता जैन**

हम सब जानते हैं कि चेतना में ज्ञानगुण होता है। चेतना कभी भी बिना ज्ञान के नहीं होती। अजागृत अवस्था में भी चेतना ज्ञान-मय ही रहती है। जहाँ भी चेतना है यानि कि एक-कोशीय सूक्ष्म-जीव से सेकर अनेक-कोशीय जीव तक या फिर वृक्ष से लेकर विकसित मनुष्य तक, वहां हम गहन अगाध ज्ञान देख सकते हैं। वृक्ष में भी आहार लेने की वृत्ति, प्रजनन वृत्ति, तथा भय आदि के भाव देखने को मिलते हैं; ये सब बातें जानते-समझते हुए भी वृक्षों के प्रति हमारा व्यवहार अनेक बार क्रूरता व उपहासपूर्ण हुआ करता है।

दोस्तों के समूह गप्पे लगाते हुए वृक्ष के पास खड़े रहते हैं, उनकी छाया का उपयोग कर बदले में वृक्षों को क्या देते हैं? लघु-शंका, पान की पिचकारी, बलगम, श्लेष्म इत्यादि उसी वृक्ष के ऊपर या उसके इर्दगिर्द छोड़ते रहते हैं। अब आप ही सोचिये, जिन वृक्षों में जीवन है वे आपके इस व्यवहार को किस रूप में लेते होंगे? उन्हें कितना दुख होता होगा? कोई अपने गन्दे हाथ, मैला वगैरा उसी पर पोछते हैं। कभी-कभी मां-बाप की उंगली पकड़े रास्ते से जाते हुए बच्चे भी अपनी मौज-मस्ती में झाड़ के पत्ते या डालियां अकारण तोड़ते हुए जाते हैं, कभी-कभी उनकी कोमल डालियों, कोपलों फूलों आदि को अपने बूटों से कुचलते हुये जाते हैं। उन्हें शायद अपनी इस क्रिया में मजा आता होगा, किसी खेल का आनन्द आता होगा। उनकी इस क्रूर क्रिया के लिए उनके माता-पिता न तो उन्हें रोकते हैं और ना ही समझाने का काम ही करते हैं, वे तो अपनी मस्ती में मशगूल बच्चे की उंगली पकड़े चलते रहते हैं। कृपया ठहरे, सोचें, झाड़ में भी जीव है, बच्चों की इस चूंटन क्रिया से उन्हें तकलीफ होती है, अकारण ही यह क्रूरता क्यों? क्या यही

है हमारी संस्कारिता ? अकारण का यह अत्याचार असहनीय है, उसे रोकना चाहिये । हां, कोई वैंसी दलील भी कर सकता है कि भला वृक्ष को, तरु को, क्या दुःख, आघात या भय लग सकता है, वह तो जड़ होता है । केवल धार्मिक ग्रन्थों में लिखा होने से उनमें जीवन मान लेना थोथी कल्पना के सिवाय क्या है ?

उनके लिए जवाब है कि भारत के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व० श्री जगदीश चन्द्र बोस ने अपनी शोध द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वृक्षों में भी जीवन है, वे आहार लेते हैं और मनुष्य की तरह अपनी भाषा में बातचीत भी किया करते हैं । उनकी इस शोध को वैज्ञानिक जगत ने मान्यता दी है । न्यूयार्क के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक क्ल्यू वेकस्टर ने भी पालीग्राफ पर किये गये प्रयोगों से उसे स्पष्ट किया है । उन्होंने पालीग्राफ के साथ जुड़े एक वृक्ष के पौधे की कलम को एक व्यक्ति के साथ जोड़ा, उसके बाद उस व्यक्ति से उन्होंने कुछ व्यक्तिगत सवाल पूछे, जवाब अगर सही होते तो पालीग्राफ खामोश रहता परन्तु जैसे ही व्यक्ति झूठ बोलता तो तत्काल पालीग्राफ पर उसकी सूचना आने लगती । इस प्रयोग से सूचित हुआ कि किसी विशेष प्रकार की अदृष्य तरंगों के माध्यम से वृक्ष की कलम का पौधा मनुष्य के मन की भावना समझ लिया करता है । वेकस्टर का दूसरा प्रयोग तो और भी अधिक अद्भुत व अनोखा है जिसमें उन्होंने किसी पौधे के हत्यारे को पहचानने के लिए दूसरे पौधे को साक्षी रूप में प्रस्तुत किया । वेकस्टर ने एक बन्द कमरे में पालीग्राफ से जुड़े दो पौधों को रखा, उसके बाद उन्होंने छः व्यक्तियों को एक-एक चिट्ठी दी जिस पर लिखा था "मौका मिलते ही किसी एक पौधे को खत्म कर डालो" । जिस व्यक्ति के हाथ में यह चिट्ठी दी गई थी, उसने चिट्ठी के अदेशानुसार एकांत की सुविधा मिलते ही एक पौधे को उखाड़ कर खत्म कर दिया । उस पौधे को तोड़ने वाले व्यक्ति की क्रिया का एकमात्र साक्षी वह दूसरा पौधा था जो बचा रहा । तीन दिन बाद उन छः व्यक्तियों को क्रमशः उस बचे हुये पौधे के पास से गुजरने को कहा गया । जब पौधे का हत्यारा बचे

हुए पौधे के पास से गुजरा तो तत्काल पालीग्राफ पर विक्षोभ अंकित होने लगा और जब तक वह व्यक्ति उस पौधे के पास रहा तब तक वह भय से कांपता रहा—शायद उसे यह भय रहा कि कहीं यह व्यक्ति उसके साथी पौधे की तरह उसका भी विनाश न कर दे। इस से इतना तो समझा ही जा सकता है कि भले ही मनुष्य की ज्ञानशक्ति/बोधशक्ति जागृत हुआ करती है, अन्य जीवों में भी उसकी मात्रा में कम-ज्यादा का परिमाण हो सकता है अथवा वह सुषुप्त अवस्था में भी हो सकती है।

अनेक वैज्ञानिकों ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि वृक्ष तथा डॉल्फिन मछली वगैरह जीवों में भी बौद्धिक क्षमता मनुष्य जितनी ही होती है। मनुष्य के पास बौद्धिक विकास करने की शक्ति, पुरुषार्थ का बल, योग्यता तथा साधनों की सुविधा अधिक होने की वजह से उसकी विकास-गति अधिक होती है, जिसके कारण सृष्टि में जीव सिरमौर की तरह सर्वोच्च स्थान पर विराजित है। यदि अपनी उस योग्यता या विकास का दुरुपयोग वह दूसरे जीवों की हिंसा या उपहास-परिहास हेतु करता है तो उसके विकास का अर्थ ही क्या रहा? विज्ञान की सिद्धि द्वारा भविष्य में कभी कोई गुनहगार किसी वृक्ष की साक्षी से गिरफ्तार कर लिया जाएगा तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए, कारण कि ऐसी गुनहगारी प्रवृत्तियां वृक्ष के तले करने को आदमी की आदत जो बनी हुई है। अतः आइये, हम संकल्प करें कि मनुष्य के श्रेष्ठ मित्र वृक्षों को अकारण हैरान-परेशान नहीं करेंगे तथा जो करता होगा उसे रोकने के प्रयास में लग जाएंगे। लोगों में वृक्ष की उपयोगिता की सच्ची समझ देने का काम करेंगे। वृक्षों को सुरक्षित वातावरण प्रदान कर हम न सिर्फ वृक्षों का बल्कि स्वयं अपना भी भला व कल्याण कर सकते हैं। हम विरला बनने का प्रयास करें—

विरला जानन्ति गुणान्, विरलाः कुर्वन्ति निर्धने स्नेहम्।
विरला परकार्यरताः, परदुःखेनापि दुःखिता विरला॥

(शेष पृष्ठ २८० पर)

# सम्पादक की ओर से

## आत्म निवेदन

**शोधादर्श** का ३०वां अंक प्रस्तुत करते हुए हमें आत्मतोष है कि जिस सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वनामधन्य डा० ज्योति प्रसाद जी जैन के सत्प्रयास से १९८६ में इस पत्रिका का शुभारम्भ किया गया था, विगत ११ वर्षों के दौरान ३० अंकों में प्रकाशित विविध शोध-खोज-जिज्ञासापूर्ति परक एवं मौलिक रचनाओं द्वारा और सामयिक सामाजिक-धार्मिक परिस्थितियों के प्रति उत्प्रेरक तथ्यों एवं चिन्तन व सम्यक् आकलन के माध्यम से उस उद्देश्य को प्रतिफलित करने की दिशा में हम अग्रसर रहे हैं। इस बीच २०० से भी अधिक पाठकों के जो पत्र हमें प्राप्त हुए हैं उनसे विदित हुआ कि हमारे प्रयास का जैन एवं जैनेतर बौद्धिक वर्ग द्वारा और समग्र जैन समाज के प्रबुद्ध जनों की सभी श्रेणियों द्वारा स्वागत तथा सराहना की गई है। पाठकों के पत्र उत्साहवर्धक व प्रेरणादायी रहे हैं, और विचार-संप्रेषण तथा तथ्य-उद्घाटन में सहगामी रहे हैं। उन सुधि पाठकों के प्रति जिन्होंने हमें अपनी प्रतिक्रिया और संवहन से अवगत कराया तथा अन्य सभी पाठकों के प्रति जिन्होंने हमें अपना मूक संपोषण प्रदान किया, तथा सभी लेखकों/रचनाकारों के प्रति जिन्होंने अपने सार्थक श्रम से इस पत्रिका को संवर्द्धित एवं संस्कारित

---

(पृष्ठ २७९ का शेष)

अर्थात्, 'गुणों को जानने वाले बहुत कम होते हैं। निर्धन लोगों के प्रति स्नेहभाव या मित्रता जताने वाले लोग भी कम होते हैं। परोपकारी कार्यों में भी बहुत कम लोगों की दिलचस्पी हुआ करती है। दूसरों का दुःख, पर-पीड़ा, देखकर दुखी होने वाले भी विरले, अर्थात् बहुत कम, लोग ही होते हैं।' श्री रमेश ओझा ने **शंख ध्वनि** में ठीक ही उद्घोष किया है—

वृक्ष को उगाएं, उजाड़े नहीं; बिना वृक्ष के जीवन रूक्ष है।

——

किया*, सम्पादक मण्डल और प्रकाशक अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

दो-चार पाठकों ने यह आपत्ति भी की है कि हम सार्व-सम्प्रदायी आम्नाय-निरपेक्ष दृष्टि क्यों रखते हैं, उपगूहन की आड़ में धर्म-गुरुओं और समाज के नेताओं के दुष्कृत्यों को अनदेखा क्यों नहीं करते हैं, और मानव समाज से विच्छिन्न तथा राष्ट्र की सामान्य जन-चेतना से असम्पृक्त, **एक कमरे में बन्द,** अल्प संख्यक सम्प्रदाय के रूप में ही **जैन** की पहचान क्यों नहीं कराते। पत्रकारिता की स्वस्थ परम्परा के अनुसरण में उनके विचारों को भी हमने 'पाठकों की दृष्टि में' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित किया है।

यदि **जैन** वास्तव में अनेकान्त-धर्मा हैं और भारत के निष्ठा-वान एवं स्वाभिमानी नागरिक हैं तथा विकासोन्मुख विशाल मानव समुदाय के क्रियाशील एवं विचारशील अंग हैं, तो वे संकीर्ण एकांत-वादिता से ऊपर उठकर एक सदाशयी और सच्चरित्र समाज के रूप में अपनी पहचान बनायेंगे—और हमें प्रसन्नता है कि प्राप्त प्रति-क्रियाओं के अनुसार जैन समाज का जागृत प्रबुद्ध वर्ग यही चाहता है। जैन समाज तभी प्रगति कर सकेगा और राष्ट्रीय एवं विश्व स्तर पर अपना सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान कर सकेगा जब उसका प्रबुद्ध वर्ग, विशेषकर शिक्षित युवा समुदाय, अनाचार से कलुषित धर्म-गुरुओं और भ्रष्टाचार में लिप्त समाज के नेताओं को बेनकाब, अर्थात् सम्यक्‌रूपेण दिगम्बर, करने का साहस जुटा पायेगा।

शाकाहार, अहिंसा, अपरिग्रह आदि मात्र थोथे नारे हैं जब हम धर्म के क्षेत्र में बढ़ती जा रही विकृतियों, अनाचार और ढोंग,

---

* अंक १ से २५ में प्रकाशित सामग्री की वर्गीकृत अनुक्रमणिका **शोधादर्श**—२५ के पृ० १०१–२४ पर दृष्टव्य है और अंक २६ से ३० की क्रमागत अनुक्रमणिका इसी अंक ३० के अन्त में दी गयी है।

तथा समाज में प्रसार पा रहे भ्रष्टाचार व कदाचार की ओर से आंखें फेर कर शुतुरमुर्गी सोच में ही आत्म-कल्याण का सुख साता अनुभव करने में मग्न हैं। भ्रष्टाचार और कदाचार के कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं—सट्टा, हवाला, मिलावट, सामिष पदार्थों का व्यापार, पशुवध-शालाओं का संचालन, शराब उत्पादन, क्षेत्रों/संस्थाओं को देय धन दबा बैठना, न्यायालय के आदेशों की खुली अवहेलना करना, शिथिलाचारी/मायाचारी/अहंकारी साधु-साध्वियों की जय बोलना और उनके सम्पत्ति/संस्थावाद/प्रचार-तन्त्र को बढ़ावा देना। समाज में विघटन और साधर्मी वात्सल्य के स्थान पर भ्रातृ वैमनस्य को पनपाने के लिए अब किन्हीं पिछड़ों को अपनी ओर आकर्षित करने और किसी तीर्थ क्षेत्र व उसकी सम्पत्ति पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के छोटे मुद्दों से आगे बढ़कर आगमिक सिद्धान्तों और आर्ष भाषा को भी विवाद के घेरे में ले आया गया है। पत्रकार-धर्मिता से जुड़े लोगों का दायित्व है कि वे जन समुदाय को तथ्यों से अवगत करायें और सही सोच की ओर प्रेरित करें।

**जैन विद्या (Jainology) सम्बन्धी अध्ययन/अनुशीलन**

जैन विद्या के सम्यक् अध्ययन, अनुशीलन और विकास की दृष्टि से यह गम्भीर चिन्तन और त्वरित कार्यवाही का विषय है कि जिन विश्वविद्यालयो/विद्यापीठों/शोध संस्थानों में जैन विद्या के अध्यापन/अनुसन्धान की व्यवस्था की गई है, उनमें इस हेतु उपलब्ध पदों पर विषय के ज्ञाता विद्वानों की नियुक्ति की जाये और यथा-सम्भव वरीयता जैन विद्वानों को दी जाय। ये पद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़ी जातियों के अभ्यर्थियों मात्र के लिये आरक्षित नहीं किये जाने चाहिएं वरन् अनिवार्यत: अन-आरक्षित रखे जाने चाहिएं जिन पर आरक्षण प्राप्त अभ्यर्थियों के आवेदन पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यह भी स्पष्ट होना चाहिये कि जैन विद्या के क्या विषय पाठ्य-क्रम में रहेंगे अथवा किन विषयों में अनुसन्धान की सुविधा उपलब्ध होगी और उसी के अनुसार पदों पर नियुक्ति हेतु योग्यता निर्धारित की जानी चाहिए।

डा० राम मनोहर लोहिया विश्वविद्यालय, फैजाबाद, में एक 'श्री ऋषभदेव जैन पीठ' की स्थापना की गई है और इसके अन्तर्गत नियुक्ति हेतु रीडर का एक पद तथा लेक्चरार/रिसर्च आफिसर का एक पद, विज्ञापित किये गये हैं जो दोनों ही पद 'अन्य पिछड़ी जातियों के लिये आरक्षित' सूचित किये गये हैं तथा योग्यता–प्राचीन भारतीय इतिहास विषय में एम० ए० के साथ जैन धार्मिक साहित्य का समुचित ज्ञान, निर्धारित की गयी है। यह विदित नहीं है कि यह पीठ किस विभाग के अन्तर्गत है, पाठ्यक्रम क्या है और 'प्राचीन भारतीय इतिहास' मात्र से इसका क्या विशेष प्रयोजन है—अतः विज्ञापन अधूरा है। तथापि खेद का विषय यह है कि जैनों की किसी भी संस्था–दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी या तेरापन्थी–द्वारा इस विज्ञापन के सम्बन्ध में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई है।

खतौली के श्री कुन्दकुन्द महाविद्यालय में संस्कृत के प्रवक्ता/अध्यक्ष डा० कपूर चन्द जैन ने इस विज्ञापन के विरोध में इस आधार पर चिन्ता व्यक्त की थी कि जैन दर्शन के विद्वान जैन दर्शन/प्राकृत/संस्कृत आदि में एम० ए०/आचार्य रहते हैं जो इन पदों के लिए अर्ह नहीं होंगे। उन्हें हमने यह परामर्श दिया था कि चूँकि विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत जैन विषयों पर शोधकार्य हो रहा है अतः किसी पद के लिये विषय सम्बन्धी योग्यता इस पर निर्भर करेगी कि पद किस विभाग के अन्तर्गत है और पाठ्यक्रम क्या है। परन्तु जहां तक आरक्षण का प्रश्न है, **संविधान से यह समर्थित किया जा सकता है कि विश्वविद्यालयों तथा अन्य सार्वजनीन संस्थाओं में यदि जैन विषयों से सम्बन्धित कोई पद हों तो उन पर नियुक्ति हेतु वरीयता जैन अभ्यर्थियों को मिलनी चाहिए।** इस मुद्दे को उठाने के लिए जैन विद्वानों का एक सार्व-सम्प्रदायी एवं आम्नाय-निरपेक्ष मंच अभीष्ट है।

अभीष्ट यह भी है कि उन सभी शोध संस्थानों और पीठों (chairs) की एक अद्यावधिक सूची तैयार की जाये जिसमें

निदेशकों/प्रभारियों और अध्यापकों/अध्यापिकाओं की, संक्षिप्त कृतित्व परिचय सहित, सूची रहे, तथा सूची में यह भी इंगित रहे कि कौन पद रिक्त हैं। महाविद्यालयों/माध्यमिक विद्यालयों के भी ऐसे अध्यापकों/अध्यापिकाओं की, जिन्होंने जैन विषयों पर शोधकार्य किया हो, उनके कृतित्व परिचय सहित, सूची अभीष्ट है। साथ ही, शिक्षण व्यवसाय से असम्बद्ध विद्वानों की भी ऐसी ही सूची होना चाहिये। ये सूचियां उपयुक्त व्यक्ति को अपेक्षित पद तक पहुंचाने में सहायक हो सकती हैं।

यहां **उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान** का उल्लेख भी प्रासंगिक है। **शोधादर्श** १६–१७ के पृ० ७६–७९ पर हम १९७२ से ९२ तक की इसकी पृष्ठभूमि का विवरण दे चुके हैं। अगस्त/सितम्बर १९९२ में और पुनः अगस्त १९९६ में संस्थान की सामान्य परिषद और कार्यकारी परिषद में जिन ९–९ गैर-सरकारी सदस्यों को उत्तर प्रदेश शासन द्वारा जैन विद्या के विद्वानों के रूप में नामित किया गया है उनमें एकमात्र पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक डा० सागरमल जैन को छोड़कर आधुनिक शोध-विधा से सुपरिचित जैन विद्या का अन्य कोई विद्वान नहीं है। यह भी खेद का विषय है कि नामित सदस्यों ने संस्थान के ज्ञापन और नियमावली को पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया, अन्यथा जिन अप्रासंगिकताओं और उपहासास्पद प्राविधानों की ओर हम शासन का ध्यान १९८६ से ही आकर्षित करते रहे हैं, उनमें से कुछ की ओर तो किसी बैठक में ये माननीय सदस्य अपना मन्तव्य अवश्य ही प्रकट करते। इस सन्दर्भ में नियमावली का नियम ३ (११) विशेष रूप से उल्लेखनीय है—"शासन द्वारा नामित **पालि**, जैन दर्शन, जैन विद्या या अन्य इसी प्रकार के क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त नौ विद्वान (जिनमें से एक शासन द्वारा उपाध्यक्ष नामित किया जाएगा)।" **पालि** के स्थान पर **प्राकृत** का उल्लेख अभीष्ट था क्योंकि जैन विद्या के लिए **प्राकृत** ही प्रासंगिक है और **पालि** नितान्त अप्रासंगिक है जो एकमात्र व विशिष्ट रूप से बौद्ध विद्या से सम्बन्धित है। जैन विद्या के एक स्वायत्तशासी और

स्वावलम्बी एकेडमिक शोध संस्थान के रूप में इसको संस्थापित करने के लिये उत्तर प्रदेश शासन को उत्प्रेरित किया जाना अभीष्ट है, और इस दायित्व का निर्वहन आम्नाय-निरपेक्ष, अनेकान्त-धर्मा, उदार-चेता, आधुनिक शोध-विधा से सुपरिचित और विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टि सम्पन्न, प्रबुद्ध जैन विद्वानों द्वारा किया जाना अपेक्षित है।

३०-११-१९९६ ई० —**डा० शशि कान्त**

मार्गशीर्ष ५, वीराब्द २५२३

★

## साहित्य सत्कार

**दस धर्म-सार,** रचयिता—श्री सुरेश 'सरल'; प्रकाशक--हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कालोनी, कनौडिया मार्ग, इन्दौर-९; १९९५; पृष्ठ-३२; मूल्य-रु० ५/-

अपभ्रंश भाषा के महाकवि रइधु (१३८२--१४७३ ई०) ने अपने दीर्घ जीवन काल में २८ से अधिक विशाल काव्य ग्रन्थों की रचना की। **पासनाह चरिउ** उनका एक सुप्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ के वैराग्य-प्रसंग में उन्होंने बारह भावनाओं का बड़ा प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। अन्तिम धर्म-दुर्लभ भावना के अन्तर्गत उन्होंने दस-लक्षण रूप धर्म की विशद् व्याख्या की है जो बड़ी लोकप्रिय हुई। कई जिनवाणी संग्रहों में तो अपभ्रंश के इन दोहों को संस्कृत की दस-लक्षण पूजा के अन्तर्गत पूजा के श्लोकों के नीचे विस्तृत विवेचना के लिए प्रकाशित किया गया है। समीक्ष्य काव्य कृति में जैन जगत के प्रसिद्ध कवि सुरेश 'सरल' ने अपनी सरल सरस शैली में महाकवि रइधु की उक्त दसधर्म विषयक दोहावली का छायानुवाद प्रस्तुत किया है, जो चिन्तनीय है, पठनीय है। स्वाध्याय प्रेमियों को यह अवश्य पसन्द आयेगी।

**श्रावक कर्त्तव्य**, लेखक—मुनि श्री सुमनकुमार "श्रमण"; प्रकाशक-- भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ, जैन स्थानक, ४६ बर्किट रोड, टी-नगर, चेन्नई-१७; १९९५; पृष्ठ १९५; मूल्य पठन-पाठन

जैन श्रावक के स्वरूप, विचार, व्यवहार तथा आचार का विस्तृत विवरण आगम साहित्य में स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध नहीं होता, उसके उल्लेख यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। तथापि दिगम्बर आम्नाय के समान श्वेताम्बर आम्नाय में भी मध्य युग में रचे गए संस्कृत-प्राकृत में श्रावकाचार विषयक कई ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं जैसे **श्रावक धर्म प्रज्ञप्ति, श्रावक गुण विवरण, श्रावक दिन कृत्य, धर्म रत्न प्रकरण** आदि। आधुनिक युग में हिन्दी भाषा में भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं, किन्तु विद्वान मुनि श्री ने जैसा सर्वांगीण व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण समीक्ष्य कृति में किया है, वह बेजोड़ है। पुस्तक में चार विभाग हैं—श्रावक स्वरूप, श्रावक द्वारा परिहार्य, श्रावक द्वारा स्वीकार्य तथा श्रावक द्वारा चिन्तनीय। सम्पूर्ण विषय कुल ३५ परिच्छेदों में प्रस्तुत किया गया है तथा प्रत्येक परिच्छेद में वर्णित विषय का मूल स्रोत, सन्दर्भ के रूप में देकर विषय-विवेचन की प्रामाणिकता सुनिश्चित की गई है। स्वाध्याय प्रेमियों तथा श्रावकाचार का पालन करने के इच्छुक सभी जैन धर्मावलम्बियों के लिये पुस्तक समान रूप से उपयोगी है, पठनीय है, चिन्तनीय है।

**तत्त्व चिन्तामणि (तीन भाग),** लेखक व प्रकाशक—वही; १९९६; मूल्य पठन-पाठन

जैन दर्शन एवं सिद्धान्त शास्त्र के गहन अध्ययन के इच्छुक मुमुक्षुओं को प्राथमिक ज्ञान की पूर्व पीठिका (back ground) के उद्देश्य से विद्वान मुनि श्री ने तीन भागों में विभक्त इस ग्रन्थ की रचना की है। अर्द्धमागधी-प्राकृत निष्ठ हिन्दी में (जिसे अपभ्रंश भाषा कहें तो कदाचित् अधिक उचित होगा) पूर्व आचार्य द्वारा चार गाथाओं में निबद्ध 'पच्चीस बोल' कण्ठस्थ करने की दृष्टि से स्थानकवासी साधुओं में बहुत लोक प्रिय हैं। इनमें गति, जाति, काय, इन्द्रिय मर्यादित, प्राण, शरीर, योग, उपयोग, कर्म, गुणस्थान, इन्द्रिय विषय, मिथ्यात्व, तत्त्व, लेश्या, ध्यान, राशि आदि २५ मूलभूत तत्त्वों का संख्या सहित नाम निर्देश किया गया है। प्रथम भाग में इन २५ बोलों को विवेचन सहित प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे भाग में नौ तत्त्वों का ही अधिक विस्तार से विवेचन किया गया है। तृतीय भाग में गति की अपेक्षा जीव की उत्पत्ति के २६ द्वार अर्थात् कौन गति वाला जीव कौन गति में उत्पन्न होता है तथा एक समय में कहां कौन जीव कितने उत्पन्न होते हैं, आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। सभी विवेचन सरल भाषा में है तथा सहज ही बोध गम्य है। जैन धर्म-सिद्धान्त के पारिभाषिक शब्दों तथा मूलभूत तत्त्वों का संक्षेप में प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी यह ग्रन्थ उपयोगी है। मुनि श्री का श्रम सराहनीय है।

**छह ढाला मन्थन**, ले०—ऐलक श्री उदार सागर म०; प्रकाशक—अनुदिश प्रकाशन, १४६, परवारन, गांधी रोड, झांसी; १९९६; पृष्ठ १३६; मूल्य रु० २५/-

कविवर पं० दौलत राम जी की इस लघु पर कालजयी कृति **छहढाला** में जैन सिद्धान्त एवं अध्यात्मवाद को सरल हिन्दी पद्य में गागर में सागर की तरह भरा गया है तथा हिन्दी भाषा के जैन साहित्य में लोकप्रियता में इसका स्थान बहुत कुछ वैसा ही है जैसा कि संस्कृत **जैन** साहित्य में **तत्त्वार्थ सूत्र** का। पू० ऐलक उदार सागर ने प्रत्येक पद का भावार्थ तथा फिर प्रश्नोत्तर शैली में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करके इस सागर के प्रत्येक मोती को चमका दिया हैं तथा बोधगम्य कर दिया है। मोक्ष मार्ग के जिज्ञासुओं के लिए ऐलक श्री की यह टीका वहुत उपयोगी है। जिल्द व मुद्रण सुन्दर हैं।

**जंचा सो लिखा**, ले०—ऐलक श्री सम्यकत्व सागर म० ; प्रकाशक—अनुदिश प्रकाशन, झांसी; १९९६; पृष्ठ ५०, मूल्य रु० १०/-

ऐलक सम्यक्त्व सागर जी एक कुशल कथा शिल्पी हैं। इस पुस्तक में उनकी छह कहानियों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। सभी कहानियां नैतिकता के उज्जवल पक्ष को उजागर करती हैं। छपाई व गेटअप सुन्दर है।

**शील मञ्जूषा**, ले०—आर्यिका विशालमती जी ; प्राप्ति स्थान—श्री दि० जैन समाज, नीमच; १९९६

आचार्य श्री विद्यासागर की सुशिष्या आर्यिका विशालमती जी ने अतिशय क्षेत्र पनागर (जबलपुर) के प्रवास में एक सुश्रावक की इस जिज्ञासा के समाधान के लिये कि हम ब्रह्मचर्य के पालन में किस प्रकार सावधानी रखें, इस पुस्तक की रचना की है। विद्वान लेखिका ने शील व्रत, अपरनाम, ब्रह्मचर्याणुव्रत, की शास्त्रोक्त विशद् विवेचना की है। लेखिका जी ने विधवाओं तथा परित्यक्ताओं के पुनर्विवाह को आगम विरुद्ध बताते हुए उसे व्यभिचार की संज्ञा दी है तथा उसका निषेध करते हुए उनके लिये वैधव्य दीक्षा की व्यवस्था दी है। विधवा व परित्यक्ता को चाहे वे किसी भी आयु की हों, शृंगार छोड़कर श्वेत वस्त्र धारण करके नीरस भोजन करते हुये और सर्व प्रकार के व्रत उपवास तथा धर्म ध्यान में रत रहते हुए अपने शील की रक्षा करने का उपदेश दिया गया है। आर्यिका जी ने विधुर या तलाकशुदा पुरुषों को पुनर्विवाह निषेध जैसी कोई व्यवस्था नहीं दी है। कदाचित् पुनर्विवाह से पुरुषों के शील व्रत (एक पत्नी व्रत) का खण्डन नहीं होता, नारियों के ही शील व्रत (स्व-पति सन्तोष) का खण्डन होता है। आर्यिका जी ने विधवाओं या परित्यक्ताओं के पुनर्विवाह को आगम विरुद्ध तो बताया है पर इस पक्ष के समर्थन में कोई आगम प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये हैं।

हमारी समझ में विवाह घर-परिवार को जोड़ने तथा समाज को सुदृढ़ बनाने वाली एक सामाजिक प्रथा है जो देश, काल व समाज की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। एक समय भारतीय समाज में पुरुषों के लिये बहु-विवाह एक आम प्रथा थी। आज एक पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना कानूनन भी अपराध घोषित कर दिया गया है। किसी काल में कदाचित् बहु-पतित्व से भी नारी के शील को दोष नहीं लगता था, आज कोई स्त्री बहु-पतित्व की कल्पना भी नहीं कर सकती। पुस्तक रोचक है, छपाई व गेट-अप सुन्दर है।

**जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर** (विविध विषय) भाग १ व २, ले०—श्री तिलोक मुनि; प्रकाशक व प्राप्ति स्थान—मनीष चौपड़ा, दैनिक

जनगण भवन, महात्मा गांधी अस्पताल रोड, जोधपुर; १९९६; मूल्य रु० १० (प्रत्येक भाग)

आगम-मनीषी श्री तिलोक मुनि जी ने जैन स्थानकवासी आम्नाय द्वारा मान्य, प्राकृत भाषा में निबद्ध, ३२ आगमों का सारांश 'जैनागम नवनीत' के रूप में हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करके जैन आगमों के अगाध ज्ञान को जन-सामान्य को सुलभ करके महती उपकार किया है । विद्वान मुनि जी ने आगमों के सम्बन्ध में जो प्रश्न साधु-साध्वियों तथा स्वाध्याय प्रेमियों द्वारा उनको शंका समाधान के लिए प्राप्त हुये उन्हें भी जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर की ३२ पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत करने का निश्चय किया है । प्रारम्भिक इन दो पुष्पों में विभिन्न विषयों के तात्त्विक एवं व्यवहारिक उपयोगी प्रश्नोत्तर दिये गये हैं ।

इन दो पुष्पों में दी गई कुछ रोचक जानकारियां, श्वेताम्बर आगमों के अनुसार, निम्न प्रकार हैं—

(१) सिद्ध भगवान सिद्ध शिला पर नहीं विराजते, वे सिद्ध शिला की सीध में **एक योजन ऊपर** लोकाग्र में स्थित रहते हैं । १४वें गुणस्थान में प्रवेश करते ही आत्म प्रदेश अपनी अवगाहना के २/३ भाग में हो जाते हैं । उस समय शरीरस्थ आत्मा खड़े हो या बैठे या अन्य किसी भी आसन में हों, आत्म प्रदेश शरीर निरपेक्ष होकर खड़े रूप में हो जाते हैं ।

(२) सिद्ध क्षेत्र में स्त्री-लिंग-सिद्ध-जीव पुरुष-लिंग-सिद्ध से संख्यात गुणा अधिक होते हैं । प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में और प्रत्येक पृच्छा समय में साध्वियों की संख्या साधुओं से अधिक ही होती हैं । केवली की संख्या में भी साध्वियां ज्यादा होती है । सवस्त्र एवं स्त्री मुक्ति को दिगम्बर आम्नाय से भी समर्थित बताते हुए मुनि जी कहते हैं कि **षट्खण्डागम्** (दि०) ग्रन्थ में १५ भेद सिद्ध होना माना है । उसमें 'स्त्री लिंग सिद्ध' 'स्त्री शरीर' वालों को ही कहा जा सकता है, और ग्रहस्थ लिंग और अन्य लिंग सिद्ध माने हैं तो गृहस्थ और अन्य लिंग वालों के कोई तो वस्त्र होगा ही । नग्न हों

तो वे दिगम्बर साधु कहलाएंगे, गृहस्थ नहीं। अतः 'गृहस्थ लिंग सिद्ध' से 'वस्त्र युक्त की सिद्धी' मानी है। दिगम्बरों के **षट् पाहुड** में एक समय में उत्कृष्ट ४० स्त्री सिद्ध होना कहा है। इन खुद के शास्त्रों से ही उनका सिद्धान्त स्व-वचन-विरोध दोष दूषित है। स्त्री लिंगी केवलियों की संख्या अधिक होने से क्या यह ध्वनि नहीं निकलती कि आगमों में स्त्री पर्याय को पुरुष पर्याय से श्रेष्ठ माना गया है। (दिगम्बर-श्वेताम्बर आम्नाय में मतभेद के दो प्रमुख सिद्धान्त सवस्त्र एवं स्त्री मुक्ति हैं। हम आशा करते हैं कि दिगम्बर जैन सिद्धान्त शास्त्रों के अध्येता विद्वान इस सम्बन्ध में सम्यक् प्रकाश डालने की कृपा करेंगे। —स०)

(३) दीक्षा लेने के समय ब्राह्मी व सुन्दरी की आयु ७७ लाख पूर्व (लगभग) थी क्योंकि भरत की उस समय इतनी उम्र थी। ऐसे सुख-सुविधापूर्ण जमाने में इन दोनों बहनों की इतने लम्बे समय तक कुंवारी रहने की बात किसी भी प्रकार से तर्क संगत नहीं है किन्तु आगमों में इसके पक्ष या विपक्ष में कोई तत्त्व मिलता नहीं है और ग्रन्थों में कुंवारी बताने का प्रवाह चल पड़ा है।

(४) भरत चक्रवर्ती के जन्म के समय माता मरुदेवी की उम्र २३ लाख पूर्व में १००० वर्ष कम थी।

(५) युगलिया काल में (अर्थात् तीसरे काल पर्यन्त) संज्ञी पंचेन्द्रिय के सभी जीव होते हैं। अतः सर्प, सिंह आदि भी होते हैं पर वे प्रकृति से भद्र होने और क्षेत्र स्वभाव के कारण युगलियों को पीड़ा नहीं पहुंचाते। मक्खी, मच्छर, कीड़ी आदि क्षुद्र प्राणी वहाँ नहीं होते। (अतः भ० ऋषभदेव को साधना काल में दंश, मशक परीषह नहीं सहना पड़ा होगा। —स०)

(६) मांसाहार और पंचेन्द्रिय हिंसा करने वाले नरक में ही जाते हैं। (ज्ञात इतिहास काल में संसार के ९०% मनुष्य मांसाहारी रहे हैं—वे सभी नरकों में ही गए होंगे? —स०)

(७) णमोकार मन्त्र आदि के माला जाप की प्रवृत्ति अल्पमत क्षयोपशम वालों की धर्म प्रवृत्ति के आलम्बन रूप चलाई गई प्रवृत्ति

है । आगम में माला जाप के निर्देश न हो कर स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान, वाचना आदि को प्रमुखता से साधना जीवन की दिनचर्या बताया गया है ।

पुस्तक ज्ञानवर्द्धक तथा संग्रहणीय है ।

**शान्ति उपदेश तत्त्व संग्रह,** सम्पादक–श्री ताराचन्द्र प्रेमी, प्रकाशक–भा० दि० जैन संघ, चौरासी मथुरा, प्रकाशन वर्ष १९९१; पृष्ठ ३५६, प्राप्ति स्थान–बिशम्भर दास महावीर प्रसाद जैन, १३२५, चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६

**शान्ति उपदेश तत्त्व संग्रह,** भाग ५, ६, ९, १०–सम्पादन, प्रकाशन व प्राप्ति स्थान यथा-उपरोक्त; १९९६; पृष्ठ ४३८

**पिंडस्थ ध्यान**, संकलन कर्ता–श्री महावीर प्रसाद जैन; प्राप्ति स्थान-वही; पृष्ठ ३१

**आत्म चिन्तन-चिन्तयता,** आचार्य श्री शांति सागर म०; प्राप्ति स्थान--उपरोक्त; पृष्ठ १६

**हिन्दी पूजन सार्थ,** प्रकाशक--श्री प्रेम चन्द जैन, ५-ए बेली रोड, दिल्ली; पृष्ठ १२०

**Illustrated Vegetarian Book** (मूल्य रु० २५/-) तथा **शाकाहार पुस्तक** (मूल्य रु० २०/-), लेखक, संकलन कर्ता व प्रकाशक--श्री महावीर प्रसाद जैन, सर्राफ, दिल्ली

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी तपोनिधि प्रशममूर्ति वयोवृद्ध आचार्य शान्ति सागर म० (हस्तिनापुर वाले) वर्तमान में उन इने-गिने महामुनियों में से हैं जो आहार-विहार में कठोरता पूर्वक संयम के साथ जीवन को नियन्त्रित रखते हैं, बाह्य व भीतर परिग्रह से रहित हैं, दीर्घ काल तक मौन साधना करना, पहाड़ों और कन्दराओं में एकाकी जीवन व्यतीत करना, अधिकांश समय स्वाध्याय, चिन्तन व मनन में बिताना--उनके मुनि जीवन के अभिन्न अंग हैं । प्रथम दो पुस्तकों में आचार्य श्री के प्रवचनों के सार संक्षेप संकलित किये गये हैं। दूसरी पुस्तक में प्रवचनों के अतिरिक्त कतिपय महत्वपूर्ण स्तोत्रों—सुप्रभात, भक्तामर, महावीराष्टक, निर्वाण काण्ड, दश भक्त्यादि, का भी सार्थ समावेश किया गया है ।

वह आचार्य श्री भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा पुनर्प्रतिष्ठित शुद्ध आम्नाय के प्रबल पक्षधर व अनुसरणकर्ता हैं। उनके प्रवचन भी शुद्ध आम्नाय के ही पोषक हैं। पंचामृत अभिषेक, अग्नि द्वारा हवन करने तथा स्त्री द्वारा प्रक्षाल का वे निषेध करते हैं। उनका कथन है कि साधु को २४ प्रकार के परिग्रह से रहित होना चाहिये, साधु को डोली, मोटर, पाटा, मच्छरदानी, लकड़ी का बक्सा, चटाई आदि रखना निषिद्ध है। वैरागी को तो यश, कीर्ति, उपाधि, व ख्याति के परिग्रह से भी रहित होना चाहिए। आ० कुन्दकुन्द कृत **योगसार** की गाथा के प्रमाण से वे कहते हैं कि इस भरत क्षेत्र में इस पंचम काल के निमित्त से साढ़े सात करोड़ भ्रष्ट, परिग्रहधारी, लोभी मुनि तथा उनके अंध श्रद्धाधारी श्रावक निगोद में जाएंगे। आचार्य श्री का कहना है कि साधुओं की आरती नहीं होनी चाहिये, और उन्हें वर्ष गांठ नहीं करानी चाहिए, स्त्रियों से पैर नहीं छुवाने चाहिए, पंखा, हीटर, कूलर, खश-खश, चटाई आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए। आदि आदि।

तीसरी पुस्तक में पिंडस्थ ध्यान का निरूपण भी आचार्य श्री के चिन्तन से संकलित किया गया है।

चौथी पुस्तक में आचार्य श्री के आत्म चिन्तन की झलक प्रस्तुत की गई है।

पांचवीं पुस्तक में कतिपय नैत्यिक हिन्दी पूजाओं को सार्थ प्रस्तुत किया गया है ताकि पूजक बन्धु पूजा के एक-एक शब्द के अर्थ को समझ कर पूजा करें क्योंकि बिना अर्थ समझे भाव नहीं लगते तथा भाव हीन क्रिया निरर्थक होती है।

**Illustrated Vegetarian Book** तथा **शाकाहार पुस्तक,** शाकाहार के प्रचार को समर्पित हैं। इनमें आर्ट पेपर पर मुद्रित सुन्दर रंगीन चित्रों के माध्यम से कत्ल किए जाते विभिन्न पशुओं को दिखाया गया है, अण्डा, मांसाहार तथा पान मसाला, तम्बाकू शराब व अन्य मादक पदार्थों के सेवन से स्वास्थ्य को होने वाली हानियों को दर्शाया गया है और संसार के प्रायः सभी धर्मों के

प्रणेताओं एवं अवतारी महापुरुषों के भव्य चित्रों के साथ उनके धर्म ग्रन्थों के उद्धरण देकर स्पष्ट किया गया है कि जीव हिंसा न करने का सभी ने उपदेश दिया है। शाकाहार व मांसाहार में पौष्टिक तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। आइसक्रीम और अनेक एलोपैथिक व होम्योपैथिक औषधियों में तथा सुगन्धित प्रसाधन समग्रियों के निर्माण में विभिन्न पशुओं के मांस, मज्जा, रक्त हड्डी व चर्बी आदि अवयवों का उपयोग किया जाना बताते हुए शाकाहारियों को इनसे विरत रहने की सलाह दी गई है। हमारी समझ में यदि कोई मांसाहारी व्यक्ति इन दोनों पुस्तकों को ध्यान-पूर्वक पढ़ें तथा मनन करें तो उन्हें अवश्य ही मांसाहार व शराब आदि मादक पदार्थों से जुगुप्सा व भय पैदा हो जाएंगे। शाकाहारी भी इनका अध्ययन करके जीव हिंसा जन्य बहुत सी वस्तुओं के उपयोग से अपने को बचा सकेंगे जिनका वे, उचित जानकारी के अभाव में, अब तक उपयोग करते रहे हैं। पुस्तकों का मूल्य लागत से भी कम ही रखा गया जान पड़ता है।

दिल्ली के सुश्रावक श्री महावीर प्रसाद (फर्म--बिशम्भर प्रसाद महावीर प्रसाद जैन सर्राफ) जिनवाणी के अनन्य सेवक हैं तथा शाकाहार प्रचार के लिये पूर्ण रूप से समर्पित हैं उन्होंने पिछले २५ वर्षों में विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रणीत १५० शास्त्र व धर्म-ग्रन्थ शास्त्र-भण्डारों, पुस्तकालयों व मुमुक्षु स्वाध्यायी बन्धुओं को भेंट स्वरूप वितरित कर जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में अपना बहुमूल्य योगदान किया है। उन्होंने हमें भी उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थ हमारी समिति के तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय में उपयोग के लिए भेजे हैं जिसके लिए हम उनके अभारी हैं :—

परमाध्यात्म तरंगिणी, ध्यान शतक तथा ध्यानस्तव, लाटी संहिता एवं रत्नकरंड श्रावकाचार, पदमनन्दि पंच विंशति, सहज सुख साधन (ले०--ब्र० शीतल प्रसाद), बृहद् द्रव्य संग्रह, तथा समाधि दीपक (आर्यिका श्री विशुद्धमती कृत)।

**—अजित प्रसाद जैन**

**आपका स्वर्ग आपके हाथों में,** लेखक--स्वामी सत्यभक्त; सम्पादक--श्री जमनालाल जैन; प्रकाशक--सत्यभक्त साहित्य प्रकाशन, वर्धा; प्रमुख वितरक : जैन बुक सेन्टर, अभय कुटीर, सारनाथ (वाराणसी)-२२१००७; पृष्ठ ११२ + आवरण; ५वां संस्करण, १९९६; मूल्य रु० २५/-

प्रबुद्ध चिन्तक पं० दरबारी लाल जी जो सम्प्रति ९७ वर्षीय स्वामी सत्यभक्त के नाम से विख्यात हैं, ने १९५० और ६० के दशकों में 'स्वार्थपरता ही नरक का मूल है और अपने तथा दूसरों के हितों का समन्वय या अभेद भाव ही स्वर्ग का मूल है', इस दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार नरक और स्वर्ग के कई शब्द-चित्र संवाद शैली में रचे थे। लोकप्रिय हुए इन संवादों को, स्वामी जी के अनुसार, एकांकी नाटक के रूप में अनेक स्थानों पर, विविध प्रसंगों पर, अभिनीत भी किया गया। उन संवाद चित्रों में से ३३ को सम्पादित कर प्रस्तुत संस्करण में समाहित किया गया है।

स्वामी जी के चिन्तन का निष्कर्ष है कि धर्म का क्षेत्र मन्दिर-मस्जिद-गिरजाघर आदि नहीं है। कदाचित् इन स्थानों से धर्म की प्रेरणा मिल सकती है, धर्म का हिसाब भी दिया जा सकता है, परन्तु धर्माचरण का स्थान तो घर, पड़ौस या आसपास का वातावरण ही है। और 'यदि मनुष्य अपने से सम्बन्धित व्यवहार-क्षेत्र को सरल, स्नेहपूर्ण, सहयोगमय तथा उदार बना ले तो स्वर्ग उसके अपने हाथ में ही है।

घर-परिवार-पड़ोस में सद्भावपूर्ण वातावरण तथा सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों के साथ स्नेहपूर्ण मधुर सम्बन्ध बनें और फलस्वरूप सबका जीवन सुखमय रहे, इस पुनीत जन-कल्याण भावना से सहज सरल भाषा में रचे गये ये रोचक संवाद-चित्र आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी के द्वारा पठनीय और मननीय हैं। कागज, मुद्रण और सज्जा की दृष्टि से पुस्तक उत्तम है और संग्रहणीय है।

पुस्तक में प्राय: प्रत्येक संवाद-चित्र के अन्त में एक विशिष्ट प्रकार की तिथि, माह और सम्वत् (यथा-१ चन्नी ११९५५ इ० सं०)

अंकित किये गये हैं जो लेखक की स्वयं की कल्पना प्रतीत होते हैं। यदि पुस्तक में इनका आधार आदि स्पष्ट किया गया होता तो उन्हें समझने में सरलता होती और उनकी कोई उपयोगिता होती। पुस्तक के अन्त में दी गई स्वामी जी की उपलब्ध-अनुपलब्ध कृतियों की जानकारी पाठकों के लिये ज्ञानवर्धक है।

**समग्र जैन चातुर्मास सूची,** १९९६, सम्पादक—श्री बाबूलाल जैन 'उज्ज्वल'; प्रकाशक—जैन एकता महामण्डल, १०५, तिरुपति अपार्टमेन्ट्स, आकुर्ली क्रास रोड नं० १, रेलवे स्टेशन के पास, कांदिवली (पूर्व), मुम्बई-४००१०१; ४०० पृष्ठ; मूल्य ४० रुपये

सभी आम्नायों के जैन साधु-साध्वियों के सम्बन्ध में प्राप्त हो सकी विविध तथ्यात्मक जानकारी संजोकर उसे एक स्थान पर उपलब्ध करना और उनके यत्र-तत्र विश्लेषण-विवेचन प्रस्तुत करना प्रस्तुत सूची की विशिष्टता है। आठ भागों में विभाजित इस विपुल सूची में भाग तृतीय में श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रमण संघ सम्प्रदाय के सन्त-सतियों के सम्बन्ध में, भाग चतुर्थ में श्वे० तेरापन्थी सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों के विषय में, भाग पंचम में श्वे० मूर्ति-पूजक सम्प्रदाय के विभिन्न गच्छों के मुनिराजों और साध्वियों के बारे में तथा भाग षष्ठम् में दिगम्बर आम्नाय के मुनिराजों और आर्यिकाओं के सम्बन्ध में वर्ष १९९६ के चातुर्मास की स्थलवार विस्तृत सूचना दी गई है। सप्तम भाग में १-८-१९९५ से ३१-७-१९९६ के मध्य हुई नई दीक्षाओं, साधु-साध्वियों को दी गई नई पदवियों व उनके महाप्रयाणों, जैन सम्प्रदाय की राष्ट्रीय संस्थाओं के अध्यक्षों, जैन साहित्य सम्बन्धी पुरस्कारों, जैन जगत में हुई ऐतिहासिक तपस्याओं तथा साधु-साध्वियों द्वारा किये गये शोध कार्यों आदि के सम्बन्ध में सूचना दी गई है। प्रथम भाग में श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय और श्वे० स्थानकवासी साधु समाज की कतिपय विशिष्ट विभूतियों का सचित्र परिचयात्मक विवरण दिया गया है।

इस सूची से विदित है कि इस समय देश में समग्र जैन साधु-साध्वियों की संख्या लगभग ११,००० है जिनमें से लगभग २,५००

साधु और ८,५०० साध्वियां हैं। श्वेताम्बर आम्नाय में क्रमश: स्थानकवासी ५०६ मुनिराज और २५०२ महासतियां, तेरापन्थी १४२ श्रमण और ५३९ श्रमणियां, तथा मूर्तिपूजक १४६४ मुनिराज और ४९५६ साध्वियां हैं। वर्ष १९९५–९६ में २२५ नई दीक्षाएं हुईं जिनमें मुनिराज और साध्वियों का अनुपात प्राय: २ : ३ है। जहां एक ७०–७५ वर्षीय वृद्ध ने दीक्षा ग्रहण की वहीं ८ वर्ष और ११ वर्ष के बालकों ने भी श्वे० मूर्तिपूजक आचार्य से दीक्षा ग्रहण की। पति-पत्नी तथा परिवार के कई सदस्यों के एक साथ दीक्षा लेने के भी समाचार हैं। बी० काम० और सी० ए० जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त युवतियों द्वारा भी दीक्षा ग्रहण की गयीं।

दिगम्बर साधु समुदाय के सम्बन्ध में जो जानकारी दी गई है, वह अपूर्ण है जैसा कि सम्पादक जी ने स्वयं स्वीकार भी किया है। कहीं-कहीं मुद्रण की त्रुटियां भी रह गई हैं जो सांख्यकीय तालिकाओं में खटकती हैं। कहीं-कहीं प्राप्त सूचना के संकलन-सम्पादन में भी चूक हो गई है, यथा—आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के नाम के सम्मुख 'शोध विषय विवरण' स्तम्भ में 'महाकवि आचार्य विद्यासागर और उनका साहित्य (डी० लिट) डा० विमल कुमार जैन नई दिल्ली' का अंकन होने से यह भ्रम होता है कि आचार्य श्री ने स्वयं अपने ऊपर व अपने साहित्य पर शोध प्रबन्ध लिखा है जब कि आशय शायद यह है कि इस विषय पर डा० विमल कुमार जैन ने शोध कार्य किया है; यह विवरण साधु समुदाय द्वारा शोधकार्य के सम्बन्ध में है अत: डा० विमल कुमार जैन की शोध का उल्लेख यहां अप्रासंगिक भी हैं। साध्वियों के शोध-प्रबन्धों के विवरण में विश्वविद्यालय का नाम तथा उपाधि अंकित नहीं है और कहीं-कहीं निर्देशक का नाम भी छूट गया है। तदपि प्रस्तुत सूची-संकलन समग्र जैन मुनि संघ के सम्बन्ध में विविध आयामी जानकारी देने वाला उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ है जिसे काफी श्रम और लगन से तैयार करने के लिये इसके सम्पादक तथा प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

**बसन्त बहार,** रचनाकार–'पुष्पेन्दु'; संकलन-सम्पादन-डा० महावीर प्रसाद जैन; प्रकाशक-जैन मिलन, ४४३, राजेन्द्र नगर, लखनऊ ४; १९९६; पृष्ठ २४५ + ४१; मूल्य रु० ४०/-

प्रातिभ स्वरों के धनी लखनऊ निवासी स्व० कवि **फूलचन्द** जैन 'पुष्पेन्दु' के १९६३ में असामयिक निधन के दो वर्ष उपरान्त उनके मित्रों के सत्प्रयास से उनकी १०८ रचनाओं का एक संकलन **बसन्त बहार** नाम से श्री जैन धर्म प्रवर्द्धनी सभा, लखनऊ, द्वारा प्रकाशित किया गया था। अब डा० महावीर प्रसाद जैन द्वारा पुनः संकलित सम्पादित **बसन्त बहार** का यह नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें 'पुष्पेन्दु' जी की १४५ काव्य रचनाओं को 'आकुल अंतर', 'दुख सुख', 'जिज्ञासा', 'मानव महान', 'देश महान', 'कवि वीणा', 'बिखरे मोती', और 'तरंग' शीर्षकों के अन्तर्गत संजोया गया है। साथ ही, परिशिष्ट में 'गुलाबो सिताबो' और 'मियां जुम्मन' नामक उनकी दो ललित गद्य रचनायें भी दी गई हैं। इस संस्करण के प्रकाशन द्वारा कविवर पुष्पेन्दु की संप्रति अलभ्य हो रही रचनाओं को काव्य रसिक पाठकों को सुलभ कराया गया है। सर्वश्री भगवती चरण वर्मा, श्री नारायण चतुर्वेदी, अमृत लाल नागर, ज्ञान चन्द्र जैन, कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' जैसे साहित्य मनीषियों, जगदीश 'पंकज', 'दिवाकर', 'रागेश' कवि मित्रों, पत्नी राजकुमारी पुष्पेन्दु व अनन्य भक्त डा० महावीर प्रसाद जैन के संस्मरणों, काव्य समीक्षा एवं भावांजलियों तथा उ० प्र० हिन्दी संस्थान के निदेशक श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय की प्रस्तावना ने प्रस्तुत संस्करण की गरिमा में अभिवृद्धि की है। सन् १९४४ में जैन ज्ञानपीठ, काशी, से प्रकाशित **आधुनिक जैन-कवि** में पृष्ठ १८५–८८ पर उनकी रचनाओं को देखने का सुअवसर हमें मिला था। यह देखकर विस्मय हुआ कि उन रचनाओं का स्वरूप प्रस्तुत संस्करण में कुछ भिन्न है। यह विदित नहीं है कि रचनाओं में यह परिष्कार स्वयं पुष्पेन्दु जी द्वारा कालान्तर में किया गया था।

पुस्तक का मुद्रण, कागज और सज्जा उत्तम है। इसको संवर्द्धित और सुसंपादित करने के लिए डा० महावीर प्रसाद जी तथा प्रकाशन हेतु जैन मिलन, लखनऊ, साधुवाद के पात्र हैं।

**यशोधरचरितम्,** रचयिता श्री वादिराजसूरि; संपादक एवं अनुवादक-डा० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य; प्रकाशक-श्री आचार्य शिवसागर दिगंबर जैन ग्रन्थमाला, शान्तिवीर नगर, श्रीमहावीर जी (राज०); १९९६; पृष्ठ ८० + १२; मूल्य १५ रुपये

संस्कृत में **पार्श्वनाथचरितम्, एकीभाव स्तोत्र, सिद्धिविनिश्चय-विवरण** और **प्रमाणनिर्णय** (अन्तिम दो ग्रन्थ न्याय से संबंधित) के रचयिता जैन मुनि श्री वादिराज सूरि प्रस्तुत कृति के कर्ता हैं। इसकी रचना के पूर्व वे **पार्श्वनाथचरितम्** की रचना कर चुके थे जैसा कि प्रथम सर्ग के श्लोक ६ से विदित होता है। तृतीय सर्ग के अन्तिम और चतुर्थ सर्ग के उपान्त्य श्लोक से यह ध्वनित होता है कि उस समय राजा जयसिंह का राज्य था। डा० पन्ना लाल जी ने इस राजा को दक्षिण के चालुक्य (सोलंकी वंश) नरेश जय सिंह (१०१६–१०४२ ई०) से समीकृत किया है। डा० ज्योति प्रसाद जैन ने वादिराज का समय १०२५ ई० सूचित किया है।

अपनी माता चन्द्रमती के आग्रह पर कुलदेवी चण्डमारी के मन्दिर में, जीवहिंसा के भय से आटे का मुर्गा बनाकर बलि देने के परिणामस्वरूप राजा यशोधर और उनकी माता को आगे छह भव तक जो पशु-पक्षी योनि में भटकते रहना पड़ा और सातवें भव में उद्धार होने पर पुनः मनुष्य योनि पाने पर वे स्वयं बलि का शिकार होते-होते बचे, यह कथानक **यशोधरचरितम्** की विषय वस्तु है। जीवहिंसा ही नहीं भावहिंसा का भी ऐसा कुपरिणाम होता है उसके दृष्टान्त स्वरूप बलि प्रथा को रोकने वाली राजा यशोधर की यह कथा अहिंसाप्रेमी जैन जगत में ऐसी लोकप्रिय हुई कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अन्य देशी भाषाओं में इस कथानक को लेकर कई रचनाएं निबद्ध हुई यथा—अपभ्रंश में **जसहरचरिउ** और आचार्य सोमदेव द्वारा संस्कृत में **यशास्तिलकचम्पू**। 'षट्तर्कभूषण',

'स्याद्वादविद्यापति' और 'जगदेकमल्लवादी' उपाधियों से विभूषित तथा संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार रखने वाले श्रीवादिराज सूरि द्वारा चार सर्गो में २९४ श्लोकों में निबद्ध भाषा और भाव वैभव से परिपूर्ण इस लघुकाय चरित काव्य **यशोधरचरितम्** का रसास्वाद हिन्दी भाषी पाठकों को कराने के उद्देश्य से इसके अनुवाद व सम्पादन का कार्य वयोवृद्ध अधिकारी विद्वान डा० पन्ना लाल जैन साहित्याचार्य द्वारा सम्पन्न हुआ है।

यह चरित्र काव्य मात्र किसी कवि की कल्पना का प्रसून नहीं है, अपितु एक मुनिराज द्वारा रचित है। भले ही प्रसंगानुसार शृंगार वर्णन इसमें अपेक्षित रहा, किन्तु मुनिराज रतिक्रिया वर्णन में कदाचित् अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर गये और वयोवृद्ध गृहस्थ विद्वान डा० पन्नालाल जी को भी उन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद करने में लज्जा आई और वे द्वितीय सर्ग के श्लोक २७ से ३२ के सम्बन्ध में "श्लोक संख्या २७ से ३२ तक का भाव मूल से जानना चाहिए" की टिप्पणी लगा कर मौन हो गये।

**—रमा कान्त जैन**

**जिनवाणी, सम्यग्दर्शन विशेषांक,** अगस्त १९९६—सम्पादक डा० धर्म चन्द जैन; प्रकाशक—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर—३०२००३; xvi + ४४०; मूल्य रु० ५०

**जिनवाणी** मासिका पत्रिका का प्रकाशन १९४४ में प्रारम्भ किया गया था। १९६४ से १९९३ तक उसके १२ विशेषांक भी प्रकाशित हुए। अब ५३वें वर्ष में उसी क्रम में यह सम्यग्दर्शन पर उसका १३वां विशेषांक है।

विशेषांक के प्रथम खण्ड में २४९ पृष्ठों में ४८ लेखों में सम्यग्दर्शन का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय खण्ड में ११० पृष्ठो में २५ लेखों में सम्यग्दर्शन के जीवन व्यवहार पक्ष पर विवेचन किया गया है। तृतीय खण्ड में ६० पृष्ठों में १२ लेखों में सम्यग्दर्शन का जैनेतर धर्मों/मान्यताओं की अपेक्षा से तुलनात्मक विवेचन है। ३ परिशिष्टों में क्रमश: श्वेताम्बर ग्रन्थों में सम्यग्दर्शन,

दिगम्बर ग्रन्थों में सम्यग्दर्शन, तथा संस्कृत ग्रन्थो में सम्यकत्व और मिथ्यात्व पर मूल गाथाओं/श्लोकों का संकलन है। बीच-बीच में विचार/कविता/तथ्य/प्रसंग दिये गये हैं जो शुष्क एकरसता का निरसन करते हैं।

'सम्यग्दर्शन और आधुनिक सन्दर्भ' विषयक हमारे लेख को सम्पादक जी ने इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया है—"श्रद्धा एवं अन्ध श्रद्धा में एक अत्यन्त पतली दीवार होती है। श्रद्धा जहाँ आत्म-कल्याणकारी होती है वहाँ अन्ध श्रद्धा सबके लिए नुकसान देह। अन्ध श्रद्धा से आज राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं यह चिन्ता प्रस्तुत लेख में संकेत करती है कि श्रद्धा का सम्यक् रूप होना आवश्यक है।" इसके लिये हम आभारी हैं।

इस विशेषांक के सम्पादक डा० धर्मचन्द जैन जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, के संस्कृत विभाग में सहायक आचार्य हैं। अपने ८ पृष्ठों के संपादकीय में उन्होंने सम्यग्दर्शन के विविध पक्षों का समीक्षात्मक समाकलन किया है और विशेषांक की विषय-व्यवस्था तथा विषय-वस्तु पर भी सम्यक् प्रकाश डाला है। जिस परिश्रम और निष्ठा से उन्होंने इस अंक का संयोजन-सम्पादन किया है, उसके लिए वह वस्तुतः बधाई के पात्र हैं। सम्यग्दर्शन जैसे गूढ़, शास्त्रीय विषय पर विविध पक्षीय पठनीय सामग्री जुटाना एक कठिन कार्य है जिसे विद्वान सम्पादक ने सहज और बोधगम्य रूप में प्रस्तुत किया है। विशेषांक संग्रहणीय है।

**अध्यात्म-पर्व-पत्रिका, 'पर्यूषण'-दशलक्षण पर्व, जैन विज्ञान एवं शाकाहार विशेषांक,** अगस्त-अक्टूबर १९९६; सम्पादक व प्रकाशक-श्री नरेन्द्र कुमार जैन; आदर्श प्रकाशन, १२८, चौधरयाना, झांसी—२८४००२; पृ० ६०; मूल्य रु० १५

जिस परिश्रम, निष्ठा और साहस के साथ श्री नरेन्द्र कुमार जैन ने विषम आर्थिक कठिनाईयों के बावजूद और अपनों की मान-कषाय को झेलते हुए इस अंक को प्रकाशित किया है, इसके लिये

वह बधाई के पात्र हैं। दश धर्मों पर, धर्म-वार, बोधगम्य सामग्री प्रस्तुत की गई है। शाकाहार पर विविध सामग्री उपयोगी है। स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन का 'आकिंचन्य की महिमा' पर लेख और श्री रमाकान्त जैन का 'सत्य व्यवहार में' लेख विषय के आशय को बोधगम्य करते हैं। विशेषांक संग्रहणीय है।

**सत्यार्थ पाक्षिक पत्र विशेषांक,** १९९५–९६, लेखक–सम्पादक पं० कैलाश चन्द्र जैन 'पंचरत्न'; ४११/७३, पुलगामा चौक, लखनऊ-२२६००३; पृ०-१४२; मूल्य रु० १०

३० वर्ष पूरा करने के उपलक्ष में **सत्यार्थ** पाक्षिक का यह विशेषांक प्रकाशित किया गया है। यह पं० कैलाश चन्द्र जैन 'पंचरत्न' की एकल संस्था रही है और वह अपने सीमित साधनों के बावजूद अपनी लगन और परिश्रम से इसे १९६६ से निरन्तर प्रकाशित करते रहे हैं।

प्रस्तुत अंक में ८१ लेखादि हैं जिनमें आधे से अधिक पंचरत्न जी की स्वयं की रचनायें हैं। अन्य लेख विषय के ख्याति नाम विद्वानों के हैं। विषय की विविधता इसकी विशेषता है। भगवान महावीर के जीवन-दर्शन, जैन धर्म के सिद्धान्त-साहित्य आदि और शाकाहार के अतिरिक्त विविध सामाजिक समस्याओं पर तथा अन्य धार्मिक मान्यताओं से सम्बन्धित लेख भी हैं। कहानी, कविता और संस्मरण रोचकता प्रदान करते हैं। विविध प्रकार की सामग्री के संयोजन के लिए पंडित जी साधुवाद के पात्र हैं। विशेषांक का गेट-अप सुन्दर है।

**GLOSSARY OF JAINA TERMS,** Edited & compiled by Dr. N. L. Jain (Rewa); pub. Jain International, 21, Saumya, Ahmedabad-380014; Aug. 1995; price Rs. 40/-

It has been rightly observed by Dr. N. L. Jain that under the current state of worldwide interest in Jainology, it is necessary to standardise as far as possible the Jaina terms in English and reduce the variety to the minimum. He has selected the most common terms and their equivalents from some 20 books published in India and abroad during 1918–94, with glossary

of their own. The product is the instant English glossary for about 3000 Jaina terms of most common use. This is a useful work, and both the editor and the publishers deserve appreciation for bringing it out.

It would have been better if Errata could be avoided. The absence of page numbers causes inconvenience. The books referred to, ought to have complete reference. Moreover, the list omits some very relevant works, e.g., Champat Rai Jain's **Key of Knowledge**, Herman Jacobi's **Jain Sutras**, J. L. Jaini's and Ajit Prasada's translations, and the works of Dr. A. N. Upadhye, Prof. A Chakravarti and Dr. Jyoti Prasad Jain. The equivalents should also carry the reference in numeral in bracket to facilitate verification.

Some equivalents are not quite appropriate. For instance, Tirthankara is not a **ford-builder**, because ford is not built but it is a place where the water is shallow and so the river can be crossed by simply walking through the water. The appropriate equivalent would, therefore, be **ford-finder**. Other equivalents are **Expounder** and **Teacher par excellence**.

**भक्तामर-स्तोत्र,** संग्राहक व प्रकाशक-श्री नरेन्द्र कुमार जैन; ५९, गांधी रोड, देहरादून; २रा सं० १९८७; पृ० ५ + ८३

जैन धर्मावलम्बियों में मानतुंगाचार्य रचित **भक्तामर स्तोत्र** विशेष लोकप्रिय है। संस्कृत में इसमें ४८ श्लोक हैं। प्रस्तुत संस्करण में मूल संस्कृत पाठ के साथ पं० हेमराज रचित **भाषा भक्तामर**, हिन्दी में अर्थ, प्रत्येक श्लोक की ऋद्धि व मन्त्र, तथा अंग्रेजी में पद्यानुवाद दिया गया है। प्रत्येक श्लोक की मन्त्र सिद्धि हेतु यन्त्र का चित्र और मन्त्र साधन की विधि और फल भी दिये गये हैं।

हिन्दी में तो इस स्तोत्र के सौ से भी अधिक पद्यानुवाद हैं जिनका संकलन **भक्तामर भारती** में पं० कमल कुमार जैन, खुरई, ने प्रकाशित किया है। परन्तु अंग्रेजी में सम्प्रति दो ही पद्यानुवाद हैं और एक गद्यानुवाद है। गद्यानुवाद डा० नेमी चन्द **जैन**, इन्दौर, ने किया है जो मार्च १९९५ में प्रकाशित हुआ। एक पद्यानुवाद १९५७ में श्री बी० डी० जैनी, लखनऊ, ने किया था और वह **भक्तामर भारती**

में संकलित है—यह मूल संस्कृत पाठ के प्रति निष्ठागत है। प्रस्तुत संस्करण में प्रकाशित दूसरा पद्यानुवाद प्रथमत: १९७९ में प्रकाशित हुआ था, परन्तु यह मूल पाठ की भावना को पूरी तरह व्यक्त नहीं करता।

प्राय: ५० वर्ष पूर्व **भक्तामर पर** एक पुस्तक देखी थी जिसमें मन्त्रों के यन्त्र चित्रित थे। मन्त्र-तन्त्र और ऋद्धि-सिद्धि का सिद्धांत रूप से जैन दर्शन और विचारधारा में कोई स्थान नहीं है। कब इस स्तोत्र को इस विद्या से जोड़ दिया गया, इसका भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। कदाचित जैन मंत्रशास्त्र में अपनी विशेष रुचि की अपेक्षा से ब्र० कौशल जी इस पर प्रकाश डाल सकें जो **शोधादर्श** के पाठको के लिए उपादेय होगा।

श्री नरेन्द्र कुमार जी को उनके परिश्रम और व्यय के लिए जो उन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित करने में उठाया है, साधुवाद !

**जैन कर्म-सिद्धांत और मनोविज्ञान,** ले०—डा० रत्नलाल जैन; प्र०—बी० जैन पब्लिशर्स प्रा० लि०, १९२१/१०, चूना मण्डी, पहाड़ गंज, नई दिल्ली-११००५५; १९९६; पृ० ९ + २८२; मूल्य रु० २५५

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। इसका शीघ्र प्रकाशन स्वागतार्ह है। **शोधादर्श**—२१ के पृ० ६३—६९ पर इसका सार-संक्षेप प्रकाशित किया जा चुका है।

मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जैन कर्म-सिद्धान्त पर ज्ञान-मीमांसा की दृष्टि से डा० मोहन लाल मेहता और डा० टी० जी० कलघटगी द्वारा पूर्व में प्रकाश डाला गया है। डा० रत्न लाल जैन द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान के सन्दर्भ में भाव जगत् तथा शरीर संरचना की दृष्टि से भी जैन कर्म-सिद्धान्त की विवेचना की गई है। लेखक के अनुसार प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर जैन कर्म-सिद्धान्त का प्रतिपादन और प्राप्त एवं अनुभूत तथ्यों के आधार पर मानव-मन और भाव-जगत् का इस प्रकार से रूपान्तरण कि वह व्यक्ति की

आत्म-तुष्टि और चरम विकास का साधन बने और समष्टि-समाज, राष्ट्र और विश्व को सन्मार्ग पर अग्रसर करने हेतु दिव्य प्रकाश-पुंज बन जाये ।

अध्ययन ८ अध्यायों में क्रमश: है--भारतीय दर्शन में कर्म-सिद्धान्त, जैन कर्म-सिद्धान्त की विशेषतायें, कर्म-बन्ध के कारण, कर्मो की अवस्थाएं-दश करण, ज्ञान-मीमांसा--आधुनिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में, भाव-जगत्--आधुनिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में, शरीर-संरचना--आधुनिक शरीर-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में, तथा आप स्वयं अपने भाग्य-कर्म-रेखा को बदल सकते हैं । अन्त में, अध्ययन में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची दी गई है जिससे विदित होता है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर, अन्य भारतीय दर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान एवं शरीर-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का अनुशीलन किया गया है जिसने अध्ययन के क्षेत्र को व्यापक बना दिया है और वह कर्म-सिद्धान्त को आधुनिक तर्क-सम्मत शैली से समझने में सहायक है । इस उपयोगी अध्ययन को प्रस्तुत और सुलभ करने के लिए डा० रत्नलाल जी साधुवाद के पात्र हैं ।

**जैन धर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता**, ले०-प्रो० लक्ष्मी चन्द्र जैन; प्र०-श्री गणेशवर्णी दि० जै० संस्थान, नरिया, वाराणसी; सित० १९९६; पृ० ३३; मूल्य रु० २०

श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी, में दिनांक २-९-१९९४ को द्वितीय 'सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन द्वारा दिये गये दो व्याख्यान इस पुस्तिका में प्रकाशित हैं । प्रो० जैन मुख्यत: गणितज्ञ होने के साथ ही गणित सम्बन्धी संस्कृत-प्राकृत वाङ्मय के तल-स्पर्शी विद्वान हैं ।

इन दो व्याख्यानों में उन्होंने क्रमश: वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्ति-निष्ठ अध्ययन का पथ प्रशस्त करने के लिये जैन धर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिक भावना को सूचित किया है । धर्म-दर्शन को वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के सापेक्ष जानने-समझने की दिशा में यह एक सत्प्रयास है ।

—**डा० शशि कान्त**

## समाचार-विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

### आचार्य द्वय के जन्म जयन्ति समारोह

(१) **मडावरा (ललितपुर)**—यहां दि० २४ अगस्त, १९९६ को आचार्य श्री कुमुद नन्दि महाराज का ३४वां जन्म जयन्ति उत्सव एक सुसज्जित मण्डप में पाद-प्रक्षालन, पूजन तथा ३४ मंगल दीपों से आरती के साथ बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया। भारी प्रभावना हुई।

(२) **निवाई (टोंक)**—यहां दि० ४ सितम्बर को आचार्य श्री दर्शन सागर म० की ५०वीं जन्म जयन्ति सोल्लास मनायी गई। दिन में भव्य रथ यात्रा निकाली गई, जिसमें तीन रथो में जिन बिम्ब विराजमान थे तथा पांच हाथियों पर दातार श्रेष्ठिगण सपरिवार आरुढ़ थे, साथ में सर पर मंगल कलश लिए महिलाएं चल रहीं थीं। रथयात्रा का १ १/२ कि०मी० लम्बा भव्य जुलूस मुख्य मार्गों से होता हुआ आचार्य श्री के चातुर्मास स्थल—श्री शान्ति दर्शन सागर संघ निवास पर पहुंच कर विनयांजलि सभा में परिणत हो गया। विनयांजलि कार्यक्रम के अन्त में ५० मंगल दीपकों से आचार्य श्री की आरती की गई।

हम भी इस शुभ अवसर पर दोनों आचार्य महाराजों को अपनी विनयांजलि अर्पित करते हैं और कामना करते हैं कि वे अपने साधना पथ पर निरन्तर निरतिचार अग्रसर होते जाएं।

जैन संस्कृति में तीर्थंकर महाप्रभुओं के जीवन की केवल पांच तिथियां हीं महत्वपूर्ण एवं स्मरण योग्य मानी गई हैं, यथा—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं मोक्ष प्राप्ति की तिथियां। इन्हें सुर, नर, सभी बड़े उल्लास, वैभव एवं भक्ति के साथ मनाते हैं। कारण, यह उनका अन्तिम शरीर होता है जो उन्हें अनन्तानंत भवों के संसार भ्रमण के उपरान्त गत अनेक भवों में असीम पुरुषार्थ से अर्जित महान् पुण्य

के फलस्वरूप प्राप्त होता है और जो विशिष्ट पुद्गल परमाणुओं से निर्मित होने के कारण रूप और बल में अद्वितीय तथा श्रेष्ठतम होता है और जिसकी अन्तिम परिणति मोक्ष प्राप्ति में होती है जब उनकी आत्मा शुद्ध-बुद्ध निरंजन होकर लोक के अग्रभाग में सिद्ध शिला पर अनन्त सुख में लीन जा विराजती है। जैन जगत में तीर्थंकरों के अलावा अनेक केवली, श्रुत केवली, ऋद्धि-सिद्धिधारी ज्योतिर्धर आचार्य महामुनि हुए हैं। उनके जन्म दिवस, दीक्षा दिवस, स्वर्गारोहण दिवस क्या थे, आज हमें इसकी भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये दिवस उनके जीवन काल में या बाद में उनके शिष्यों-प्रशिष्यों या श्रद्धालु जनों द्वारा मनाए गये हों, इसकी जानकारी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इधर इस युग के प्रथम आचार्य चा० च० श्री शान्ति सागर म० के स्वर्गारोहण के उपरान्त हमारे आचार्यों, मुनिराजों तथा आर्यिकाओं में अपने या अपने गुरू के जीवन के इन महत्वपूर्ण दिवसों को, विशेषकर जन्म जयन्तियों को, सार्वजनिक रूप से बड़े वैभव एवं समारोह के साथ मनाने का रिवाज चल पड़ा है। किसी-किसी आचार्य/आर्यिका की जन्म जयन्ति पर तो दूर-दूर से सहस्रों की संख्या में आए भक्तों की भीड़ जुटती है, अनेक भव्य कार्यक्रमों का, शोभा यात्रा का, आयोजन किया जाता है तथा विशाल पैमाने पर प्रीति भोज दिये जाते हैं तथा लाखों का व्यय किया जाता है। पाद-प्रक्षालन, पूजन व आरती तो होती ही है। कहीं-कहीं इन पर बोलियाँ भी लगती हैं। मुनि/आर्यिका संघों में इसकी भी स्पर्धा चलने लगी है कि किस साधु/साध्वी की जयन्ति कितने विशाल स्तर पर तथा कितने भव्य कार्यक्रमों के साथ मनाई गयी। उनकी यश-कीर्ति-ख्याति का भी इसे पैमाना बनाया जाता है।

साधु-साध्वियों की दीक्षा जयन्ति मनाया जाना तो ठीक है क्योंकि यह शिष्यों व श्रावकों को उनको विनयांजलि अर्पित करने तथा उनका गुणानुवाद करने का सुअवसर प्रदान करती है। स्वर्गा-

रोहण दिवस को उनकी स्मृति अक्षुण्ण रखने के लिए मनाया जाना भी उचित ही है। किन्तु हमें गृहस्थों की तरह जन्म जयन्ति मनाने का औचित्य समझ में नहीं आता क्योंकि यह माना जाता है कि जैनेश्वरी दीक्षा के साथ साधक की गृहस्थ पर्याय छूट जाती है तथा नये साधु जीवन का प्रारम्भ हो जाता है।

मुनि-आर्यिकाओं की नाम से पूजा-आरती की भी कोई प्राचीन पृष्ठभूमि नहीं मिलती क्योंकि यद्यपि अधिकांश मुनि/आर्यिका व्यवहार से सम्यग्दृष्टि माने जाते हैं निश्चय नय से उनमें से विरले ही सम्यग्दृष्टि होते हैं अन्यथा उनकी कथनी-करनी में अन्तर नहीं होता। नाम से रची गई पूजाओं में अभी तक विक्रिया ऋद्धिधारी महामुनि विष्णु कुमार की तथा घोर उपसर्ग विजयी अकम्पनाचार्यादि सात सौ मुनियों की पूजा ही सर्वाधिक प्राचीन मानी जाती है किन्तु वह भी १००–१५० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। अनाम साधु परमेष्ठी की या गुरू पूजा में सभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्रधारी मुनियों की पूजा का समावेश हो जाता है।

### तीर्थ क्षेत्रों के नाम से भारी धोखा-धड़ी

**वीतराग वाणी** के विद्वान सम्पादक पं० बिमल कुमार सोंरैया पत्रिका के सितम्बर १९९६ के अंक में तीर्थ क्षेत्रों के पेशेवर प्रचारकों द्वारा की जा रही धोखा-धड़ी का सनसनीखेज भण्डाफोड़ करते हुए लिखते हैं—"महरौली (जिला ललितपुर) में ३०–३२ ऐसे पेशेवर प्रचारक पकड़े गये हैं जो बुन्देलखण्ड के विभिन्न तीर्थ क्षेत्रों के प्रचारक के रूप में बरसों से कार्यरत हैं, क्षेत्र के पदाधिकारी के हस्ताक्षर से परिचय पत्र लिये हैं, परन्तु उस क्षेत्र की डुप्लीकेट रसीद बुकें छपा कर वसूल की गई पूरी राशि स्वयं हड़प जाते हैं। कुछ ऐसे धूर्त प्रचारक भी पकड़े गये हैं जो जैन नहीं हैं पर अपने को जैन कह कर **देवगढ़ आदि क्षेत्रों के नाम पर दान राशि वसूल कर** अपनी जेब भर रहे हैं········इन्हीं की संगति में कुछ नीच जाति के लोग भी जैन समाज से पैसा चन्दा-चिट्ठा इकट्ठा करते पकड़े गये हैं··········

**जैन समाज में कुछ ऐसे घिनौने निन्दनीय व्यक्ति भी हैं, जो अपने खेतों को ही अतिशय क्षेत्र का नाम देकर तथा स्वयं ही उसके पदाधिकारी बनकर** चन्दा-चिट्ठा इकट्ठा कर रहे हैं.........यह तो निर्विवाद सत्य है कि **आज किसी भी क्षेत्र का कोई भी प्रचारक वेतन पर नियुक्त नहीं है**........चन्दा इकट्ठा करने के अपने श्रम के एवज में दान राशि का ४५—५० प्रतिशत भाग लेते हैं। इस पर इन्हें सन्तोष नहीं तथा डुप्लीकेट रसीद बुकें छपा कर पूरी की पूरी दान राशि हड़प जाते हैं.........अतः मेरा भारत की समस्त **जैन समाज से निवेदन है कि प्रथम तो प्रचारक को दान देना बन्द कर दें, जो भी देना हो उस क्षेत्र को सीधे मनीआर्डर, चैक, ड्राफ्ट द्वारा भेजें**, जिन क्षेत्रों का नाम प्रगट है या आपने कभी वन्दना की है उन क्षेत्रों को ही दान भेजें। **बुन्देलखण्ड में आज गांव-गांव में अतिशय क्षेत्र बनने लगे हैं। कोई मन्दिर के नाम पर, कोई विद्यालय के नाम पर ठगी कर रहे हैं**.....अगर आप **प्रचारकों को** दान देते ही हों तो **नकद एक पैसा भी नही दें** अन्यथा आपका दान निरर्थक ही जायेगा.........**कुछ प्रसिद्ध क्षेत्रों के मन्त्रीगण पैढ़ीगत बने हैं,** बाप मरा तो बेटा, बेटा मरा तो नाती और ऐसे क्षेत्रों को दी गई दान राशि का दस प्रतिशत भी सार्थक नहीं हो पाता। ......... महरौली जैन समाज के कुछ व्यक्तियों ने इन प्रचारकीय चालबाजियों का भंडाफोड़ किया और समाज को आगाह करने के लिए हजारों की संख्या में अपील पत्र भेजे हैं।''

श्री विमल कुमार सोंरैया जैन जगत के जाने माने प्रतिष्ठाचार्य व तीर्थ-भक्त विद्वान हैं, बुन्देलखंड के सभी प्राचीन तीर्थ क्षेत्रों व नवोदित तथाकथित तीर्थ क्षेत्रों से और उनकी प्रबन्ध व्यवस्था से भली भांति परिचित हैं। इन क्षेत्रों के पेशेवर प्रचारकों तथा कतिपय प्रसिद्ध क्षेत्रों को प्रमुख पदाधिकारी द्वारा अपनी या अपने परिवार की निजी सम्पत्ति मान कर उसकी आय का मनमाने ढंग से उपभोग करने के विषय में उन्होंने जो लिखा है, वह रन्च मात्र भी अतिरंजित नहीं है। कुछ क्षेत्रों के प्रबन्धकों द्वारा ऐसे समाचार भी

जैन पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित कराए जाते रहे हैं कि अमुक नाम का व्यक्ति उस क्षेत्र के नाम से चन्दा-चिट्ठा वसूल करते घूम रहा है, वह धूर्त है, क्षेत्र द्वारा चन्दा प्राप्त करने के लिए अधिकृत नहीं है। सोरैया जी की यह सलाह समीचीन है कि दातार बन्धु तीर्थ क्षेत्रों को (और वह भी जाने-माने क्षेत्रों को ही) अपनी दानराशि सीधे क्षेत्र को भेजें, प्रचारकों के माध्यम से नहीं। हम इसमें यह भी जोड़ना चाहेंगे कि केवल ऐसे तीर्थ क्षेत्रों को ही दान भेजा जाए जो भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी या आंचलिक दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी से सम्बद्ध हों तथा इसका उल्लेख अपनी परिचय पत्र या रिपोर्ट में किए हों। भारतवर्षीय व आंचलिक तीर्थ क्षेत्र कमेटियों को भी इस आशय की अपील जारी करनी चाहिए।

हमारी स्वयं की जानकारी में ऐसे तीर्थ क्षेत्र आए हैं जहाँ मुख्य पदाधिकारी क्षेत्र को अपनी वंशानुगत जैसी मिल्कियत मान कर उसकी आय का मनमाने ढंग से अपव्यय या दुरुपयोग करते हैं।

अभी कुछ ही वर्ष पहले एक सुप्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र पर उसके निवर्तमान पदाधिकारियों ने वर्तमान अध्यक्ष–मंत्री पर क्षेत्र पर प्राप्त धनराशियों के भारी अपव्यय व दुरुपयोग के आरोप सप्रमाण लगाए थे तथा समस्त आय-व्यय के किसी सी: ए: की फर्म द्वारा निष्पक्ष आडिट कराए जाने की मांग की थी, जो मानी नहीं गई। हमारा यह सुस्पष्ट मत है कि हमारे तीर्थ क्षेत्रों के समुचित विकास के लिए मात्र इतना पर्याप्त नहीं है कि समाज उदारतापूर्वक दान दे, साथ में यह भी उतना ही आवश्यक है कि दान राशि का दातार बन्धु द्वारा समुचित सदुपयोग भी सुनिश्चित किया जाए। अधिकतर दातार बन्धुओं की यह मानसिकता होती है कि हमने तो दान दे दिया, अब हमें उससे क्या लेना-देना ; यदि कोई दुरुपयोग करेगा तो स्वयं पाप का बंध करेगा। किन्तु यह सोच घातक है, तीर्थ क्षेत्रों के समुचित विकास में बाधक है, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है।

हमारी समझ में भारतवर्षीय तथा आंचलिक तीर्थ क्षेत्र कमेटियां यदि यह सुनिश्चित कर सकें कि प्रत्येक तीर्थ क्षेत्र के आय-व्यय का आडिट नियमित रूप से चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स द्वारा हुआ करे तथा उनकी प्रबन्ध कमेटियों के विधिवत् निर्वाचन समय पर हो जाया करें तो यह काम तीर्थ क्षेत्रों के विकास की दिशा में नींव के पत्थर के समान होगा। तीर्थ क्षेत्रों के आय-व्यय का आडिट भारतवर्षीय/आंचलिक तीर्थ क्षेत्र कमेटी को अपने व्यय पर तथा अपने नियन्त्रण में कराना चाहिए तथा प्रत्येक क्षेत्र के आडिट शुदा हिसाब को समाज की जानकारी हेतु **तीर्थ वन्दना** पत्रिका में प्रकाशित कराना चाहिए।

**शौरसेनी प्राकृत गोष्ठी**

श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, में श्रुत पंचमी—प्राकृत भाषा दिवस की पूर्व वेला में (दि० २१ मई, १९९६, को) आचार्य विद्यानन्द जी तथा मुनि श्री कनकोज्ज्वलनन्दि जी के सानिध्य में द्वितीय राष्ट्रीय शौरसेनी प्राकृत भाषा संगोष्ठी का आयोजन हुआ। संगोष्ठी में देश भर के सत्रह विद्वानों/विदूषियों ने अपने शोध-पत्रों का वाचन किया।

आचार्य श्री ने अपने आशीर्वचन में कहा कि सिंधु सभ्यता के समय से अर्थात् आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व प्राकृत भाषा ही इस देश की जनभाषा थी। सम्राट अशोक व खारवेल की राजाज्ञाएँ भी इसी भाषा में शिला खंडों पर खोदी गई थीं। पुष्पदंत, भूतबलि, कुन्दकुन्द आदि संतों ने इसी भाषा में अपने महान् ग्रन्थों की रचना की। अतः समग्र भारतीय चेतना का साक्षात्कार करने के लिए देशवासियों को प्राकृत-भाषा को सीखना, समझना चाहिए। प्राकृत भाषा की क्रमबद्ध शैक्षणिक योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए विद्वत्जन, श्रेष्ठी गण तथा समाज सेवियों का सहयोग अपेक्षित है।

उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष डा० मण्डन मिश्र, मुख्य अतिथि साहु श्री अशोक जैन और विशिष्ट अतिथि साहु रमेशचन्द्र जैन थे।

संगोष्ठी के चार सत्रों में १२ शोध-पत्र **भगवती अराधना** के विभिन्न पक्षों पर, ४ **धवला, जयधवला,** तथा **समयसार** पर तथा एक "शौरसेनी प्राकृत के व्याकरणीय सूत्र" पर प्रस्तुत किए गए। संगोष्ठी के संयोजक डा० सुदीप जैन थे।

दि० २२ मई को अखिल भारतीय शौरसेनी प्राकृत काव्य गोष्ठी का आयोजन हुआ। उसका संयोजन भी डा० सुदीप जैन ने किया और अन्त में श्री कनकोज्ज्वल नन्दि जी, प्रो० भागचन्द्र भास्कर, डा० दामोदर शास्त्री, डा० प्रेम सुमन जैन, डा० राजाराम जैन तथा प्रो० हरिराम आचार्य ने स्वरचित काव्य रचनाओं का पाठ किया। पुनश्च, काव्य गोष्ठी के समापन पर आचार्य श्री ने अपने आशीर्वचन में कहा कि विद्वज्जन एवं कवि ही अपने कृतित्व से यह सिद्ध कर सकते हैं कि शौरसेनी प्राकृत का युग सिंधु सभ्यता के काल में भी था और आज भी है। शौरसेनी प्राकृत की महत्ता एवं प्रासंगिकता घटी नहीं है, उसका युग आज भी प्रवर्तित है, यह हमें सिद्ध करना है।

भगवन्त पुष्पदंत व भूतबलि मुनि द्वय ने द्वादशांग श्रुत के एकदेश ज्ञाता ज्योतिर्धर आचार्य धरसेन से १२वें अंग दृष्टिवाद में समाहित अग्रायणी पूर्व के चयन लब्धि अधिकार के अन्तर्गत कर्म प्रकृति प्राभ्रत की वाचना ले कर उसे शौरसेनी प्राकृत भाषा में निबद्ध किया था तथा इसे ताड़ पत्रों पर लिपि बद्ध कर सन् ७५ ई० की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को पुस्तकारुढ़ कर चतुर्विध संघ के समक्ष उसका लोकार्पण किया था। किसी ग्रंथ के पुस्तक रुप में लिपि बद्ध करके लोकार्पण किए जाने की विश्व के इतिहास में कदाचित् यह पहली घटना है जिसका उल्लेख वर्ष तिथि सहित उपलब्ध है। ऐसा नहीं है कि **षट्खण्डागम** के पूर्व कोई ग्रंथ रचा गया ही न हो। द्वादशांग श्रुत को तो गणधर देव इसके ६३५ वर्ष पूर्व ही निबद्धकर चुके थे तथा उसके बाद ईसा पूर्व की शताब्दियों में श्रुत के कतिपय अंशों पर आधारित स्वतन्त्र ग्रन्थों का निर्माण करना भी ज्योतिर्धर आचार्यो द्वारा प्रारंभ किया जा चुका था। किन्तु उपयुक्त लेखन

सामग्री के अभाव में उन्हें रचना के समय ही लिपिबद्ध करना संभव नहीं हो पाया था तथा उन्हें मौखिक पद्धति द्वारा कंठस्थ करके प्रज्ञा श्रमणों द्वारा स्मृति पटल पर ही संरक्षित करने का प्रयास किया जाता रहा था। सन् ७५ ई० की ज्येष्ठ शु० ५ को **षट्खण्डागम** ग्रन्थ को पुस्तकारुढ़ करने के साथ ही अन्य सभी ग्रन्थ (पूर्व में रचित ग्रन्थों सहित) लिपि बद्ध किए जाने लगे। साहित्य जगत में अभूत पूर्व क्रान्ति हुई—ग्रन्थों के पुस्तक रूप में लिपिकरण का युग प्रारम्भ हुआ ; ज्येष्ठ शुक्ल ५ लोक में ज्ञान के पर्व 'श्रुत पंचमी' के रूप में समादृत हुई। शौरसेनी प्राकृत में ग्रन्थ रचना ईसा की प्रथम सहस्राब्दि के अन्तिम चरण तक अनवरत होती रही तथा इस भाषा में विपुल साहित्य का निर्माण हुआ।

आचार्य श्री की प्रेरणा से स्थापित तथा मार्गदर्शन में संचालित श्री कुन्दकुन्द भारती शौरसेनी प्राकृत भाषा के उन्नयन तथा इसके साहित्य के संरक्षण के लिए पूर्ण रूप से समर्पित है। गत वर्ष से यह संस्था शौरसेनी प्राकृत के महत्व के प्रति समाज एवं सरकार का ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से श्रुत पंचमी पर्व को प्राकृत भाषा दिवस के रूप में मनाने लगी है तथा उस अवसर पर शौरसेनी प्राकृत भाषा संगोष्ठी एवं काव्य गोष्ठी का आयोजन करती है। ये दोनों कार्यक्रम समीचीन ही हैं।

संगोष्ठी में बताया गया कि सिन्धु सभ्यता के समय से अर्थात् पांच हजार वर्ष पूर्व प्राकृत भाषा ही इस देश की जन भाषा थी। जहां तक हमारी जानकारी है, मोहनजोदड़ों के उत्खनन में प्राप्त मुद्राओं (seal) आदि पर अंकित शब्द-अक्षर अभी तक निश्चित रूप से नहीं पढ़े जा सके हैं। इस देश की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी से भी उसका कोई साम्य नहीं मिलता। अत: सिन्धु घाटी सभ्यता की भाषा के विषय में कोई भी कथन अभी निश्चित रूप से नहीं किया जा सकता। पर पांच हजार वर्ष पूर्व ही क्यों, उससे भी सहस्रों-सहस्रों वर्ष पूर्व भगवान ऋषभदेव के काल से इस देश की जो भी जन भाषा रही होगी वह दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व प्रचलित प्राकृत

का ही कोई आदिम रूप रहा होगा। यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्राकृत वैदिकी-संस्कृत के प्रादुर्भाव के पूर्व से ही इस देश के बहु भाग की जन भाषा रही है। भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर पर्यन्त सभी तीर्थंकरों की दिव्य देशना जन साधारण की बोलचाल की भाषा में हुई थी जिसे हम उनके समय की प्राकृत कहें तो असंगत न होगा। भगवान महावीर के पूर्व के तीर्थंकरों के श्रुत का आज कोई अवशेष उपलब्ध नहीं है। इन्द्रभूति गौतम, सुधर्मा आदि गणधर देवों द्वारा निबद्ध द्वादशांग श्रुत का बहु भाग लिपि करण के पूर्व काल में स्मृतिक्षीणता के परिणाम स्वरूप विच्छिन्न व नष्ट हो गया। परवर्ती काल में रचित शौरसेनी प्राकृत भाषा का साहित्य ताड़पत्रों के जीर्ण-शीर्ण हो जाने से बहुत कुछ नष्ट हो गया। फिर भी अभी भी जो अवशिष्ट है वह काफी विशाल है। दि० २४-२५ जुलाई, १९९५, को श्री कुन्दकुन्द भारती प्राकृत भवन, नई दिल्ली, में ही सम्पन्न हुई अ० भा० दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद की कार्यकारिणी समिति की बैठक में पारित प्रस्ताव (३) में यह सूचना उपलब्ध कराई गई थी कि शौरसेनी प्राकृत भाषा के अप्रकाशित ग्रन्थों की संख्या वर्तमान में दस हजार है। यदि देश के विभिन्न सरस्वती भण्डारों में संग्रहीत इस विपुल साहित्य के समुचित संरक्षण की (माइक्रो-फिल्मिग, लैमिनेशन आदि के द्वारा) कोई योजना आचार्य श्री के मार्ग दर्शन में बनाई जाए तो वह एक ठोस कार्य होगा। हमारा अनुमान है कि श्री कुन्दकुन्द भारती में अब तक शौरसेनी प्राकृत के विशेष महत्व के कतिपय ग्रन्थ संकलित कर लिये गए होंगे। यदि प्राकृत भाषा दिवस पर ऐसे ग्रन्थों का विस्तार पूर्वक परिचय (विषय, गाथाओं की संख्या, पृष्ठ सं०, ग्रन्थकर्ता व लिपिकार का नाम व काल, पाण्डुलिपि की स्थिति आदि) उपलब्ध कराया जाया करे, तो प्राकृत भाषा से अनभिज्ञ प्रबुद्ध वर्ग भी उपकृत होगा। ऐसे ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद सहित सुसम्पादित प्रकाशन की भी योजना बनाई जानी चाहिए। राष्ट्रीय प्राकृत शैक्षणिक संस्थान की सार्थकता भी तभी होगी जब उसके माध्यम से शौरसेनी प्राकृत

के ऐसे ठोस विद्वान पैदा हो सकें जो अप्रकाशित ग्रन्थों के सुसम्पादन का गुरुतर भार संभाल सकें।

प्राकृत अब तीसरी पीढ़ी की भाषा हो गई है जिसमें ग्रन्थ रचना एक हजार वर्ष पूर्व समाप्त हो चुकी थी। बोलचाल की भाषा के रूप में तो उसका स्थान इससे भी १००–२०० वर्ष पूर्व अपभ्रंश ने ले लिया था जो आजकल की देशी जन भाषाओं की जननी है। प्राकृत भाषा के सामान्य शिक्षण के प्रसार से या इसमें स्फुट काव्य रचनाओं से अब इसे पुनर्जीवित करना सम्भव नहीं है।

[यद्यपि दिगम्बर जैन आम्नाय का प्राय: सम्पूर्ण आगमिक साहित्य शौरसेनी प्राकृत भाषा में निबद्ध है, तथापि **सम्पूर्ण जैन आगमिक साहित्य** मात्र शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध नहीं है (दृष्टव्य, **शोधादर्श**–२६ में डा० शशि कान्त का विचार-विन्दु 'भगवान महावीर की प्राकृत')। गणाधिपति तुलसी के संरक्षण में जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू, से प्रतिवाद के स्वर भी प्रस्फुटित होने लगे हैं (दृष्टव्य, मुख पत्र **तुलसी प्रज्ञा**, ९७, अप्रैल-जून १९९६, में डा० परमेश्वर सोलंकी का सम्पादकीय " 'शौरसेनी' कहने का आग्रह क्यों ?"; साथ ही, आचार्य महाप्रज्ञ का लेख "आर्ष प्राकृत : स्वरूप एवं विश्लेषण" और प्रो० प्रबोध वे० पंडित का "प्राकृत के प्राचीन बोली विभाग" भी उसी अंक में ध्यातव्य हैं)। ]

## अतिशय क्षेत्र केशवराय पाटन में भूगर्भ विस्तारीकरण

"श्री मुनिसुव्रत नाथ दि० जैन अतिशय क्षेत्र केशवराय पाटन (राज०) में भूगर्भ में श्री मुनिसुव्रत नाथ स्वामी की महामनोज्ञ चमत्कारिक अतिशय से युक्त, चतुर्थकालीन प्रतिमा विराजमान है। ......भूगर्भ में जगह की कमी के कारण पूजा, अर्चना एवं दर्शन करने में यात्रियों को असुविधा होती है। इसको मद्देनजर रखते हुए पूज्य **गणिका** आर्यिका ज्ञानमती माता जी के यहां आगमन पर उनके सान्निध्य में दिसम्बर १९९५ को भूगर्भ विस्तारीकरण एवं पंच पहाड़ी (मिनी राजगृही) के निर्माण हेतु शांतीयंत्र की स्थापना की गई।

······विस्तारीकरण का शुभारम्भ १५ जुलाई, १९९६ को पूजा अर्चना के साथ किया गया ।''                **—तीर्थ वन्दना**, नवम्बर १९९६

दिगम्बर जैन समाज में अनेक प्राचीन तीर्थंकर प्रतिमाओं को, विशेष कर जिन पर कोई प्रतिमा लेख नहीं होता, या लेख घिस गया होता है, अधिक महिमा मंडित करने के प्रयोजन से 'चतुर्थ कालीन' कहने का कुछ रिवाज सा पड़ गया है । 'चतुर्थ कालीन' के अर्थ होते हैं कि प्रतिमा का निर्माण भगवान महावीर के समय में या उनके पूर्ववर्ती काल में हुआ होगा । किन्तु यदि लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त विवादास्पद खण्डित मूर्ति को छोड़ दिया जाय तो कंकाली टीला (मथुरा) से प्राप्त जिन प्रतिमाएं एवं उनके अवशेष अब तक प्राप्त सर्वाधिक प्राचीन माने जाते हैं जिनका समय ईसा पूर्व पहली शताब्दी से पीछे नहीं जाता है । भगवान महावीर के समय में यक्ष मन्दिरों के उल्लेख तो मिलते हैं पर जिन मन्दिरों का कोई प्रामाणिक उल्लेख अभी तक देखने में नहीं आया । अधिकतर लेख हीन प्राचीनतम् प्रतिमाएं गुप्त कालीन (४थी शताब्दी तथा उसके बाद की) ही मिली हैं । जब इस तरह का कथन **तीर्थ वन्दना** जैसी पत्रिका (जो 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी' का मुख पत्र है) में छपता है तो उसकी विश्वसनीयता पर उक्त कमेटी की भी मुहर लग जाती है । पत्रिका के प्रबन्ध तन्त्र से इस ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा की जाती है ।

इसी समाचार में पूज्य आर्यिका ज्ञानमती जी के नाम के आगे '**गणिनि**' के स्थान पर '**गणिका**' मुद्रित होना छापे की भयंकर असावधानी है । 'गणिनि' के अर्थ होते हैं 'आर्यिका संघ की प्रमुखा' जबकि 'गणिका' 'वेश्या' का पर्यायवाची शब्द है । पत्रिका के प्रबन्धकों को इस भयंकर गलती के लिए खेद प्रकाश करना चाहिए तथा पूज्य आर्यिका माता जी से क्षमायाचना करनी चाहिए ।

**श्री सम्मेद शिखर जी**

श्री हरख चंद नाहटा, ट्रस्टी, श्री श्वेताम्बर मूर्ति–जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट, नई दिल्ली—

"नवभारत टाइम्स के १० सितम्बर के संस्करण में 'पार्श्वनाथ की मूर्ति पुनः लगाने का संकल्प' नामक शीर्षक से एक समाचार छपा, जिसमें दिगम्बर समाज के नेता साहू श्री अशोक कुमार जैन द्वारा श्री सम्मेदशिखर जी तीर्थ में हुई बैठक को सम्बोधित करते हुए यह संकल्प व्यक्त करते लिखा है कि 'पर्वत की टोंक से हटाई गयी भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा निश्चित रूप से पुनः वहां स्थापित की जाएगी।' साहू अशोक कुमार जी का **यह कथन एक दम असत्य व समाज को भ्रमित करने वाला है।** पार्श्व नाथ भगवान की कोई प्रतिमा वहां से कभी भी नहीं हटाई गयी और इस बात का प्रमाण सन् १९०२ में सब जज न्यायालय हजारीबाग में चरण के लिए किये गये वाद सं० ५/१९०२ में उपलब्ध है जो स्वयं दिगम्बर समाज ने डाला। उस वाद से व बाद में लोकल कमिश्नर की रिपोर्ट से व वादोत्तर से यह स्पष्ट है कि वहां कभी भी पार्श्वनाथ की दिगम्बर प्रतिमा नहीं थी। जब वहां कोई दिगम्बर प्रतिमा थी ही नहीं तो हटाई जाने की बात कहना मिथ्या भाषण है। आश्चर्य होता है कि उस बैठक को सानिध्य मिला हुआ था वयोवृद्ध दिगम्बर जैनाचार्य श्री आर्यनन्दी जी महाराज का व उसमें उपस्थित थे कानून विशेषज्ञ डा० डी० के० जैन (जो) सब कुछ जानकारी रखते हुए भी साहू जी के मिथ्या भाषण को सुनकर भी चुप रहे। जानकारी तो साहू जी को भी थी पर उन्होंने जानबूझ कर दिगम्बर समाज के लोगों को श्वेताम्बर समाज के विरुद्ध भड़काने के लिए इस तरह की बातें कहीं। .........मेरी दिगम्बर समाज के उन अग्रणी नेताओं से व साधु गणों से (जो सत्य महाव्रत का पालन करते हैं) अपील है कि वे ऐसे गुमराह करने वाले व्याख्यानों की निन्दा करें व समाज को सत्य का बोध करावें।"

**—श्वेताम्बर जैन** दि० १ दिसम्बर, १९९६

श्री नाहटा जी ने अपने उपरोक्त वक्तव्य में साहू अशोक कुमार जी पर मिथ्या भाषण करने तथा समाज को गुमराह करने का गम्भीर आरोप लगाया है। श्री साहू जी दिगम्बर जैन समाज के

शीर्ष नेता हैं, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष हैं तथा श्री सम्मेदशिखर तीर्थराज के विकास के लिये पूर्ण रूप से समर्पित हैं। हम नहीं समझते कि बिना किसी ठोस प्रमाण के उन्होंने भगवान पार्श्वनाथ की दिगम्बर प्रतिमा के सुवर्णभद्रकूट टोंक पर अतीत में स्थापित रहने की बात कही होगी तथा उसे पुनः स्थापित करने का संकल्प व्यक्त किया होगा। किन्तु यदि उनके पास ठोस प्रमाण हैं तो उन्हें प्रकाश में लाना चाहिए ताकि इस प्रकार के आरोपों का निराकरण हो सके। जहां तक आचार्य आर्यनन्दी जी का प्रश्न है, यदि उन्हें किंचित भी आभास हुआ होता कि यह मिथ्या भाषण किया जा रहा है तो हमें पूर्ण विश्वास है कि या तो वे उसका विरोध करते या बैठक से उठ कर चले जाते।

## कुन्दकुन्द अंग्रेजी भाषा के समर्थक थे–मुनि श्री की अभूतपूर्व खोज

"दि० २० अक्टूबर को दि० जैन महावीर शिक्षा परिषद द्वारा संचालित अंग्रेजी माध्यम के महावीर पब्लिक स्कूल के दो करोड़ की लागत से निर्मित किये जाने वाले भवन के शिलान्यास समारोह में लगभग १०,००० के विशाल जन समूह को सम्बोधित करते हुए मुनि श्री सुधासागर जी ने अंग्रेजी भाषा को सीखने व सिखाने की जोरदार वकालत की और कहा कि इस भाषा को अपना कर हम विश्व को जैन संस्कृति की जानकारी दे सकते हैं। आपने बताया कि कुन्दकुन्द ने आंग्ल भाषा को पढ़ने के समर्थन की बात भी कही है। मुनि श्री ने जिस प्रकार से आचार्य कुन्दकुन्द का सन्दर्भ देकर आंग्ल भाषा को उचित ही नहीं आवश्यक बताया उससे जैन समाज द्वारा अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोलने की सार्थकता का पक्ष मजबूत हो गया।"

—**जैन सन्देश**, २७ नवम्बर, १९९६

मुनि श्री सुधासागर जी द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द के सन्दर्भ से की गई इस अभूतपूर्व शोध-खोज को पढ़ कर हमें बड़ा विस्मय हुआ, विशेषकर जबकि आचार्य कुन्दकुन्द के समय में अंग्रेजी भाषा अस्तित्व में ही नहीं आई थी तथा इंग्लैण्ड में जंगली कबीलों की बस्तियां थीं।

आचार्य कुन्दकुन्द के भी सैकड़ों वर्ष बाद इंग्लैण्ड पर दीर्घ काल तक रोमन साम्राज्य तथा उसके बाद नार्मन, फ्रैन्च, जर्मन जातियों का आधिपत्य रहा । इन सबके मिश्रण से अब से सात सौ-आठ सौ वर्ष पूर्व से ही अंग्रेजी भाषा का विकास होना प्रारम्भ हुआ । यह उल्लेखनीय है कि यूरोप की मुख्य भूमि (main land) पर अंग्रेजी भाषा का कोई बोलबाला नहीं है तथा सम्पर्क भाषा के रूप में फ्रैन्च या जर्मन भाषा का ही प्रयोग किया जाता है । हां, पूर्व के ब्रिटिश उपनिवेशों में अब भी जनसंख्या के कुछ प्रतिशत द्वारा अंग्रेजी बोली व समझी जाती है तथा कुछ ने इसे ही अपनी राज भाषा बना लिया है (जैसे उत्तरी अमेरिका व आस्ट्रेलिया) । हमारे देश में अंग्रेजों के देश को छोड़ कर चले जाने के पचास वर्ष बाद भी अभिजात्य वर्ग का इस भाषा के प्रति मोह कुछ बढ़ता ही जा रहा है और अंग्रेजी माध्यम के तथाकथित स्कूलों की संख्या भी कुकुरमुत्तों की भांति बढ़ती जा रही है जबकि अब अंग्रेजी राजकाज की भाषा भी नहीं रह गई है तथा इसके बोलने-समझने वालों की संख्या भी दिन-प्रति-दिन घटती चली जा रही है । शिक्षाविदों की आम राय है कि बालक का बौद्धिक विकास **मातृ भाषा** के माध्यम से दी गई शिक्षा से सहज, स्वभाविक व द्रुत गति से होता है। बहरहाल मुनि श्री सुधा सागर जी को उनकी इस अभूतपूर्व शोध-खोज के लिए जयपुर की दिगम्बर जैन समाज को उन्हें किसी उपयुक्त उपाधि से अवश्य अलंकृत करना चाहिए ।

यह देखकर क्षोभ होता है कि आज हमारे महाव्रती साधुगण किस प्रकार ठाकुर सुहाती के मोह में पड़कर, सच-झूठ का विवेक छोड़ कर, साधु जीवन की मर्यादा ताक पर रख रहे हैं ।

——

## अभिनन्दन

ओन्टेरियो, कनाडा, से प्रकाशित JINA MANJARI के सम्पादक श्री एस० ए० भुवनेन्द्र कुमार को उनके शोध-प्रबन्ध 'Jains in America—A Social Study' पर कनाडा की Albuquerque University द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की गई।

श्रीमती सुधा जैन, वाराणसी, को 'जैन योग एवं बौद्ध योग का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनू, द्वारा जुलाई १९९६ में पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की गई।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा वर्ष १९९६ के लिए घोषित पुरस्कारों में दिल्ली की डा० निर्मला जैन को रु० २५५०१/- के 'साहित्य भूषण सम्मान' से सम्मानित किया गया।

समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, रत्नकरंड श्रावकाचार एवं प्रथमानुयोग के ग्रन्थों के गम्भीर अध्येता तथा जैन धर्म/दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष के प्रस्तोता, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, के भौतिक विज्ञान अध्ययनशाला के प्रोफेसर, डा० पारसमल अग्रवाल ने अमेरिका के ६ अन्य वैज्ञानिकों के साथ भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र और गणित विषयों में उपयोगी विभिन्न प्रकार के कम्पन स्पेक्ट्रम में एक महत्वपूर्ण मौलिक खोज की है जिसे वैज्ञानिकों ने Continuous Frequency Modulation Effect (CFM Effect) नाम दिया है। अमेरिकन इन्स्टीट्यूट आफ फिजिक्स के Journal of Chemical Physics, अगस्त १९९६, के अंक में इस खोज का प्रकाशन हुआ है।

ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त डा० लक्ष्मीमल सिंघवी को लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा एल–एल० डी० की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। इस सम्मान को प्राप्त करने वाले

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के बाद डा० सिंघवी दूसरे भारतीय हैं। उनके ६ वर्ष के कार्यकाल में डा० सिंघवी को सम्मानित करने वाले विश्वविद्यालयों में लन्दन विश्वविद्यालय १२वां है ।

'पट्टमहादेवी शान्तला' के यशस्वी लेखक श्री सी० के० नागराजा राव का ८१ वर्ष पूर्ण करने पर 'सहस्र चन्द्र दर्शन शान्ति' समारोह द्वारा २२ जुलाई को बंगलौर में अभिनन्दन किया गया ।

पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य का १९ सितम्बर को बीना (सागर) में ९२वां जन्म दिवस समारोह डा० दरबारी लाल कोठिया के संयोजन और डा० फूलचंद्र जैन प्रेमी (वाराणसी) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। पंडित जी का पुष्प-हार व श्रीफल द्वारा अभिनन्दन किया गया ।

भावनगर में २२ सितम्बर को गुजरात विश्वविद्यालय के प्राकृत-पालि विभाग के पूर्व अध्यक्ष डा० के० आर० चन्द्र को 'श्री हेमचंद्राचार्य चन्द्रक' पुरस्कार से 'कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य नवम जन्म शताब्दी स्मृति-संस्कार शिक्षण निधि' द्वारा सम्मानित किया गया ।

नई दिल्ली में २९ सितम्बर को नशा मुक्ति, अपराध सुधार तथा शाकाहार को बढ़ावा देने की दिशा में किये गये प्रयासों के लिए श्रीमती किरण बेदी, आई०पी०एस०, को १९९६ का अहिंसा एवं सद्भावना पुरस्कार जैन महासभा द्वारा प्रदान किया गया ।

राजसमंद में ७७ वर्षीय समाजसेवी श्री मोहन भाई जैन को १९९४-९५ का एक लाख रुपये का 'अणुव्रत पुरस्कार' जय तुलसी फाउन्डेशन द्वारा प्रदान किया गया ।

श्री जगवीर किशोर जैन, प्राचार्य, बाबूलाल जैन इंटर कालेज, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए ।

श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, में ३ नवम्बर को 'सेठ लाल-चन्द हीराचन्द दोशी स्मृति न्यास' की ओर से वर्ष १९९५ का एक

लाख रुपये का 'आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार' डा० कमलचंद सोगानी को प्रदान किया गया।

उपरोक्त सभी महानुभावों को **शोधादर्श** उनकी उपलब्धि पर बधाई देता है और अपनी शुभकामना प्रेषित करता है।

## समाचार विविधा

**दूरदर्शन केन्द्र, लखनऊ,** द्वारा पर्यूषण पर्व के उपलक्ष में २५ सितम्बर और पुनः २६ सितम्बर को 'आत्मशुद्धि का पर्व–पर्यूषण पर्व' कार्यक्रम प्रसारित किया गया। चर्चा में डा० वृषभ प्रसाद जैन ने दश धर्मों पर प्रकाश डाला और डा० (श्रीमती) बीना बन्सल ने पर्व के सामाजिक पक्ष पर विचार दिये। प्रस्तुति श्रीमती सुधा जिन्दल ने की।

**राजभवन, लखनऊ,** में ३० अक्तूबर को विश्व मैत्री दिवस का आयोजन लखनऊ जैन मिलन और युवा जैन मिलन द्वारा किया गया। महामहिम राज्यपाल श्री रोमेश भण्डारी ने भगवान महावीर की अहिंसा को आज के संघर्षशील जीवन के लिए उपायोगी बताया।

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, सआदतगंज, लखनऊ में ४ नवम्बर को कनाडा से आये Jina Manjari के सं० **डा. एस. ए. भुवनेन्द्र कुमार का अभिनन्दन** और दिल्ली के श्री राजीव प्रसाद जैन तथा लखनऊ के डा० वृषभ प्रसाद जैन, डा० शशि कान्त और श्री रमाकान्त जैन का, जैन सस्कृति के बहुआयामी प्रसार-प्रचार के लिए श्री निर्मल कुमार सेठी एवं स्थानीय जैन समाज द्वारा सम्मान किया गया। डा० भुवनेन्द्र कुमार ने बताया कि अमेरिका महाद्वीप में एक लाख जैन धर्मावलम्बी हैं जो Ameri-Jains कहे जाने चाहिये। संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में लगभग ५० जैन मन्दिर/संस्थान भी हैं।

**कविवर पुष्पेन्दु स्मृति समारोह**

२१ नवम्बर को रवीन्द्रालय, लखनऊ, में जैन मिलन और युवा जैन मिलन के तत्वावधान में लखनऊ के ख्यातिनामा कविवर

पुष्पेन्दु स्मृति समारोह का संयोजन श्री नलिन कान्त जैन द्वारा किया गया। दूरदर्शन केन्द्र, लखनऊ, के निदेशक श्री रमाकान्त सिन्हा ने पुष्पेन्दु जी के चित्र पर द्वीप प्रज्जवलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया और पुष्पेन्दु जी के काव्य संकलन **बसन्त बहार** का लोकार्पण किया। समारोह की अध्यक्षता हिन्दी जगत के वरिष्ठ पत्रकार एवं वयोवृद्ध साहित्यकार श्री ज्ञान चन्द्र जैन ने की तथा श्री जगन्नाथ सिंह, आई०ए०एस०, विशेष सचिव, उ० प्र० शासन, समारोह में विशिष्ट अतिथि थे। पुष्पेन्दु जी का जीवन परिचय डा० महावीर प्रसाद जैन ने प्रस्तुत किया और उनकी कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डा० शम्भू नाथ चतुर्वेदी ने किया। राज्यपाल के सलाहकार श्री बी० एन० स्वरूप ने अपना सन्देश भेजा। **बसन्त बहार** के प्रकाशन में उदार आर्थिक सहयोग के लिये श्रीमती सुशीला जैन का अभिनन्दन किया गया। डा० शशि कान्त और श्री नरेश चन्द्र जैन ने भी विचार व्यक्त किये।

श्री फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' का जन्म १९१४ ई० में हुआ था और एक संघर्षशील जीवन जीने के बाद वह १९६३ में ४९ वर्ष की अल्प वय में दिवंगत हो गये थे तथा अपने पीछे अपनी पत्नी श्रीमती राजकुमारी जैन और चार अबोध पुत्रियों को छोड़ गये थे। उनका कार्य स्थल लखनऊ नगर रहा था परन्तु हिन्दी क्षेत्र में काव्य गोष्ठियों एवं सम्मेलनों में उनकी उपस्थिति अभीप्सित रहती थी। वह एक जन्मजात कवि थे और हिन्दी काव्य जगत के अपने समय के एक सशक्त हस्ताक्षर थे।

इस अवसर पर पुष्पेन्दु जी के गीतों का सस्वर गायन श्रीमती सुधा जिन्दल, कु० मनीषा जिन्दल, श्रीमती रंजना झवेरी, कु० रूपा झवेरी तथा सर्वश्री दिव्य रंजन चक्रवर्ती, पूरन चन्द जैन, रोहित कुमार जैन और राहुल जैन ने प्रस्तुत किया। पुष्पेन्दु जी की कविताओं पर श्रीमती रमा अग्रवाल और श्रीमती पूर्णिमा अग्रवाल के संयोजन में भाव-नृत्य भी प्रस्तुत किये गये। पुष्पेन्दु जी की हास्य

नाटिका "गुलाबो-सिताबो" का मंचन भी किया गया जिसका निर्देशन श्री प्रभु दयाल ने और प्रस्तुति श्रीमती सुधा जिन्दल ने की।

पुष्पेन्दु जी की स्मृति में काव्य संध्या का भी आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता पुष्पेन्दु जी के समकालीन व साथी और हिन्दी के वरिष्ठ गीतकार श्री राम बहादुर सिंह भदौरिया ने की तथा संचालन युवा कवि श्री शैलेन्द्र शुक्ल ने किया। सर्वश्री रमा कान्त जैन, रवि अवस्थी, सुरेश 'आवारा', गौरीश श्रीवास्तव, भोला नाथ श्रीवास्तव 'अधीर', अनन्त प्रकाश तिवारी, नारायन प्रकाश 'नजर', आदित्य चतुर्वेदी, घनानन्द पाण्डे और सोहन लाल 'सुबुद्ध' ने सरस कविता तथा गीत प्रस्तुत किये। श्री रमा कान्त जैन ने काव्य समारोह का विषय प्रस्तुत करते हुए पुष्पेन्दु जी के सम्बन्ध में कहा—"इन्दु सी धवल कीर्ति वाले,
पुष्प थे तुम निराले।"

**जैन सांसद :** जैन सांसदों में श्री धनन्जय कुमार जैन कर्नाटक से, श्री गुमानमल लोढा राजस्थान से, श्री एम० पी० वीरेन्द्र कुमार केरल से, श्री कलप्पा अवाडे महाराष्ट्र से और श्री सत पाल जैन चण्डीगढ़ से निर्वाचित लोकसभा सदस्य हैं। श्री सुन्दर सिंह भण्डारी (राजस्थान) और श्री राघव जी (गुजरात) राज्य सभा के सदस्य हैं।

**समाजसेवी जैन महिला :** मेरीलैण्ड (संयुक्त राज्य अमेरिका) से सुश्री अजीज हनिफ्फा ने रिपोर्ट किया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में गरीबों के लिए वही कार्य श्रीमती लीला शाह १९७२ से करती रहीं जो मदर टेरेसा के नाम से विख्यात पोलैण्डवासी महिला भारत में करने का प्रचार करती रहीं। श्रीमती लीला शाह का जन्म राजस्थान में हुआ था और वह पुणे के फर्गुसन कालेज से अर्थशास्त्र में स्नातक थीं। अपने पति डा० नवीन शाह, जो एक विख्यात मूत्ररोग विशेषज्ञ हैं और American Association of Physicians from India के प्रेसीडेन्ट रहे हैं, के साथ १९७२ में वह वाशिंगटन आयीं और वहाँ गृह-विहीनों के सबसे बड़े आश्रय

Community for Creative Non-violence से जुड़ गयीं जहां निराश्रित गरीब अमेरिकनों को भोजन और वस्त्र दान स्वरूप उपलब्ध कराये जाते हैं। ५४ वर्ष की अल्पायु में, कैन्सर रोग से संघर्ष करते हुए, उनका असामयिक निधन अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में हो गया। विडम्बना यह है कि भारतवासी विदेशी मदर टेरेसा के तो गुणगान करते नहीं थकते परन्तु विदेशों में कार्यरत अपनी मदर टेरेसा को जानते भी नहीं।

**जैन विद्या संगोष्ठी** : कुन्दकुन्द विद्यापीठ, इन्दौर, द्वारा १२–१३ मार्च को जैन विद्या संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें जैन धर्म एवं विज्ञान, जैन धर्म एवं पर्यावरण, तथा जैनागम एवं वास्तुशास्त्र विषयों पर शोधपत्र प्रस्तुत किये गये और चर्चा हुई। तदुपरान्त कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार–९५ प्रो० भागचन्द जैन 'भास्कर' को समर्पित किया गया। डा० भास्कर ने पुरस्कार राशि २५,०००/- में स्वयं अपनी ओर से ७५,०००/- की राशि मिलाकर १,००,०००/- के पारमार्थिक ट्रस्ट के गठन की घोषणा की जिससे गरीब छात्रों को छात्रवृत्ति एवं अन्य शैक्षणिक कार्य सम्पादित किये जायेंगे। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कोषाध्यक्ष ने भी आगामी वर्ष १९९७ से पुरस्कार राशि बढ़ाकर १,००,०००/- करने की घोषणा की।

**श्रवणबेलगोल की चामुण्डराय बस्ती के सहस्राब्दी महोत्सव के सन्दर्भ में सेमिनार** : श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर "चामुण्डराय बस्ती" के नाम से प्रसिद्ध, होयसल कला का प्रतिनिधि, जैन मन्दिर ९९६ ई० में बन कर तैयार हुआ था और १९९६ ई० इस मन्दिर के निर्माण का सहस्राब्दी वर्ष है। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी ने श्रवणबेलगोल में ११–१२ मई को एक सेमिनार का आयोजन किया। इसमें उत्तर भारत से तथा महाराष्ट्र और कर्नाटक से २० विद्वानों ने विचार-विमर्श किया। संयोजक श्री नीरज जैन ने और सह-संयोजक प्रा० नरेन्द्र प्रकाश जैन ने श्वेताम्बर साधु श्री नरेन्द्र सागर सूरी की दुर्भावना पूर्ण पुस्तक के प्रति विरोध

प्रकट किया और सभी ने एक स्वर से इतिहास को दूषित करने वाले ऐसे प्रयत्नों की निन्दा की।

**जैन वाङ्मय में सिद्धक्षेत्र चम्पापुरी-मंदारगिरि संगोष्ठी :** अक्तूबर २०–२२ को आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज के पावन सानिध्य एवं आर्यिकारत्न श्री स्याद्वादमती माता जी के मंगल निर्देशन में श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र चम्पापुर (नाथनगर), भागलपुर, में सम्पन्न इस संगोष्ठी में दस शोधपत्रों का वाचन छह सत्रों में पूर्ण हुआ तथा उन पर महत्वपूर्ण परिचर्चाएं हुईं। प्रथम सत्र की अध्यक्षता भागलपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डा० एम० क्यू० तौहीद ने की। मुख्य अतिथि डा० मुरारी लाल शर्मा, वाणिज्य विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय, थे और संयोजक डा० लालचन्द जैन थे। डा० लाल चन्द जैन, वैशाली, डा० विद्यावती जैन, आरा, डा० जैनमती जैन, आरा, डा० कमलेश कुमार जैन, वाराणसी, श्री श्रीचन्द्र पाटनी, भागलपुर, डा० ऋषभ चन्द्र जैन, वैशाली, डा० गोकुल चन्द्र जैन, वाराणसी, डा० फूलचन्द्र जैन प्रेमी, वाराणसी, और डा० (श्रीमती) सुनीता जैन, आरा, ने शोधपत्र प्रस्तुत किये।

**जैन विद्या विचार संगोष्ठी** : २४ से २७ अक्टूबर को समवसरण मन्दिर परिसर, कंचनबाग, इन्दौर में तृतीय जैन विद्या विचार संगोष्ठी सम्पन्न हुई। प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश, फिरोजाबाद, श्री चक्रेश जैन, इन्दौर, प्रो० पारसमल अग्रवाल, उज्जैन, डॉ० नलिन के० शास्त्री, गया, डॉ० डी० आर० शर्मा, इलाहाबाद, डॉ० अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद, श्री नीरज जैन, सतना, डा० नेमीचन्द जैन, इंदौर और डॉ० अशोक जैन, ग्वालियर ने शोध पत्र प्रस्तुत किये और जैन धर्म/दर्शन/विज्ञान के वैश्विक अवदान पर डॉ. सुधांशु कुमार जैन, प्रो. सुश्री ललिताम्बा, डॉ. अभय प्रकाश जैन, डॉ. कमलेश जैन, डॉ. भागचंद जैन 'भागेंदु', प्रो. ए. बी. सिरवानी, डॉ. आराधना जैन व श्री सुरेश जैन (आई. ए. एस.) ने अपने विचार प्रकट किये।

**अनेकान्त संगोष्ठी** : मध्य प्रदेश संस्कृत अकादेमी, भोपाल, एवं चातुर्मास सेवा समिति, इंदौर, के संयुक्त तत्त्वावधान में भारतीय-दर्शन के महत्त्वपूर्ण प्रस्थान जैनदर्शन के अनेकांत सिद्धांत पर "अखिल भारतीय अनेकांत-संगोष्ठी" दिनांक १५ एवं १६ नवम्बर को श्री समवशरणमंदिर परिसर, कंचनबाग, इंदौर, में सम्पन्न हुई।

## शोक संवेदन

१५ अप्रैल, १९९६, को मेरठ में ६५ वर्षीय सुश्रावक श्री महेश चन्द्र जैन का निधन हो गया।

१४ मई को पुणे में गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, के इतिहास एवं संस्कृति विभाग की अध्यक्ष और अन्तर्राष्ट्रीय जैन विद्या केन्द्र की नियामक डा० मधु सेन का दुःखद निधन हो गया।

१ अगस्त को धामनोद से इन्दौर जाते हुए बस दुघर्टना में संस्कृत-प्राकृत भाषाविद् जैन साहित्य के विद्वान डा० वृद्धिचन्द्र जैन शास्त्री का निधन हो गया।

२५ अगस्त को पटना में श्री जैन बाला विश्राम बालिका उच्च विद्यालय, आरा, की प्राचार्या और **जैन महिलादर्श** की सम्पादिका एवं कवयित्री सुश्री शशि प्रभा जैन 'शशांक' का असामयिक निधन हो गया।

२८ अगस्त को एक बस दुघर्टना में जयपुर के वयोवृद्ध विद्वान, ८२ वर्षीय, पं० मिलाप चन्द जैन शास्त्री का आकस्मिक निधन हो गया। वह जैन दर्शन के प्रभावक व्याख्याता थे।

धार में ८८ वर्षीय वयोवृद्ध समाजसेवी श्री केसरीमल जैन 'सेनापति' का निधन हो गया। वह हिन्दुस्तान सेवा संघ के अध्यक्ष थे।

४ सितम्बर को इन्दौर में अ० भा० दिगम्बर जैन महिला संगठन की अध्यक्ष, ८२ वर्षीय, श्रीमती चन्द्रप्रभा देवी मोदी का निधन हो गया। वह सर सेठ हुकुम चन्द जी की सुपुत्री थीं और ओजस्विनी कवयित्री थीं।

१९ सितम्बर को बलिया में ८४ वर्षीय, प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार, पं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का निधन हो गया। इन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के तत्त्वावधान में जैन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की थी।

५ अक्तूबर को जयपुर में पूर्व अध्यापिका तथा सुप्रसिद्ध समाजसेविका श्रीमती मोहना देवी जैन (घमाणा वाले) का निधन हो गया। १९४१ में साहित्य रत्न और न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाली वह प्रथम जैन महिला थीं।

२४ अक्तूबर को मुरादाबाद में ८० वर्षीय वैद्य विष्णु कान्त जैन ने समाधिमरण पूर्वक देह त्याग किया। चिकित्सा व्यवसाय में स्थानीय जैन बन्धुओं से उन्होंने अपने जीवन भर कोई फीस नहीं ली।

७ नवम्बर को ऋषभदेव (राज०) में ८० वर्षीय पं० महेन्द्र कुमार "महेश" का निधन हो गया।

२० नवम्बर को फिरोजपुर झिरका में ८१ वर्षीय आचार्य श्री शान्ति सागर का सल्लेखनापूर्वक महाप्रयाण हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की सद्गति एवं चिरशांति की कामना करता है, और उनके स्वजनों/प्रियजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

## आभार

खतौली (जिला मुजफ्फरपुर) के श्री विमल कुमार जैन ने अपने पूज्य पिता श्री आत्माराम जैन की पावन स्मृति में **शोधादर्श** को ५० रुपये भेंट किये।

पचेवर (जिला टोंक) के श्री मिलापचन्द शान्तीलाल जैन अग्रवाल ने अपने पूज्य पिता श्री नौरतमल जैन अग्रवाल की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को २१ रुपये भेंट किये।

मेरठ के श्री हुकम चन्द जैन ने अपने नवीन प्रतिष्ठान के शुभारम्भ पर तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति को १०१ रुपये भेंट किये।

# पाठकों की दृष्टि में

**शोधादर्श–२८** : जैन धर्म के अलावा अन्य धर्मों के विषय में लेख प्रस्तुत किये हैं–पढ़कर अच्छा तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त हुआ। आपके परिश्रम के लिये अभिनन्दन।

–**श्रीमती गीता जैन**, मुम्बई

एक मित्र ने मुझे **शोधादर्श** का २८वां अंक दिया। ऐसी योग्य-भावुक-विद्वन्मन्डली द्वारा तैयार किया हुआ, उच्चकोटि के आवश्यक समाज-हितैषी लेखों और समाचारों से पूर्ण प्रकाशन को देखकर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपनी समाज की बहुत बड़ी कमी को आपने शोभा के साथ और विद्वत्ता के साथ पूरा किया है।

–**श्री सुखमाल चन्द जैन**, नई दिल्ली

**शोधादर्श २९** : श्री अमर पाल सिंह जी का क्रान्तिकारी स्व० श्री अर्जुन लाल जी सेठी पर नई जानकारी के साथ परिचय पढ़ा, अच्छा लगा। और भी शोध की आवश्यकता है। सेठी जी की एक पुत्री श्रीमती शकुन्तला जी महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण पत्रकार श्री तारानाथ जी रावल को ब्याही थीं। श्रीमती शकुन्तला जी उन दिनों भैरव रत्न बागडी मातृ पाठशाला में प्रधान अध्यापिका थीं - मेरे घर के सामने से (उन दिनों मैं ७वीं का विद्यार्थी था) रोज स्कूल जाती थीं। मेरा उनसे व श्री तारा नाथ जी रावल जो पत्रकार थे, से परिचय था। एक बार एक डिबेट-प्रतियोगिता में दोनों ने मिलकर मुझे भगवान पार्श्वनाथ की फोटू कमठ के साथ पुरस्कार में दी थी, वह आज भी मेरे पास बीकानेर में है। रावल जी के कई पुत्र भी थे–वे आजकल कहाँ हैं, मैं भी पता लगाऊँगा। श्री सेठी जी की पुस्तकें व चित्र का पता लगाना चाहिए–जयपुर व अजमेर में सेठी जी के परिवार की अगली पीढ़ी जरूर रहती होगी। सेठी जी ने देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में जैन समाज का नाम रोशन किया।

'समाचार विमर्श' – शीर्षक के अन्तर्गत आपने सम्मेत शिखर पर निर्माण कार्य के बारे में लिखा है, वह सही है। चापड़ कुण्ड पर काफी निर्माण हो गया है। अदालत ने श्वेताम्बर समाज के नाम stay order दे रखा है, फिर भी साहू अशोक कुमार जी उसको नहीं मानते हैं। अभी ता० २५ अगस्त को सासनी (अलीगढ़) में सेठ प्रकाश चन्द जी जैन की प्रथम पुण्य तिथि प्रसंग पर साहू जी स्वयं मुख्य अतिथि रूप में पधारे थे, मैं भी गया था। साहू जी ने अपने भाषण में कहा—हमें दिगम्बरत्व की रक्षा करनी है–कोर्ट के आदेश की हम परवाह नहीं करते हैं– हम तो निर्माण कराते जावेंगे। आपने इसे अनैतिक कार्य कह कर

इसकी आलोचना की है। आप न्याय पक्ष का व कानून का आदर करते हैं। आपके इस साहसपूर्ण लेखन के लिये मैं आपको बधाई देता हूँ। नियम-विरुद्ध सब कार्य अनैतिक हैं चाहे श्वेताम्बर करें या दिगम्बर।

**शोधादर्श** का निष्पक्ष रूप में निरन्तर निखार आ रहा है, उसके लिये पुन: आपको बधाई।

**—श्री हजारीमल बांठिया**, कानपुर

**शोधादर्श** का अंक २९ मिला। जिज्ञासा और समाधान वाली सामग्री में चिन्तन है। शास्त्रीय चिन्तन की अपेक्षा स्वतन्त्र चिन्तन अति आवश्यक है। लगता है शास्त्र तो प्राय: शस्त्र का काम करते हैं।

श्री स्व० अर्जुन लाल जी सेठी विषयक परिचय महत्वपूर्ण है। महात्मा भगवान दीन जी, कारंजा के देवचन्द जी चवरे (बाद में मुनि समतभद्र जी) और सेठी जी परस्पर सहयोगी थे। महात्मा जी ने सन् १९११ में हस्तिनापुर में गुरुकुल स्थापित किया। उस समय के उनके अनुभवों का इतिहास बड़ा ही महत्वपूर्ण, पर अप्रकाशित है।

**—श्री जमना लाल जैन**, वाराणसी

जुलाई की **शोधादर्श** पत्रिका उपलब्ध हुई। 'व्यसन-जाल' का लक्ष्यार्थ आज भी सामयिक प्रतीत होता है। क्रान्तिकारी अर्जुन लाल सेठी जैसे समाज-सेवी का स्मरण वस्तुत: प्रेरणाप्रद स्मरण है। पत्रिका सारगर्भित सामग्री के संचयन से परिपूर्ण है।

**—आचार्य शिवचन्द्र शर्मा**, सहारनपुर

हमेशा की तरह यह अंक वाचनीय है। मननीय है।

**—श्री शांतिलाल के० शहा**, सांगली

पत्रिका का २९वां अंक समक्ष है। 'साहित्य सत्कार' के अन्तर्गत 'क्रान्तिदूत', 'हिन्दी भाषा' तथा 'भावक एवं चिन्तक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी' ग्रन्थों की समीक्षा का इस शोधपरक पत्रिका में प्रकाशित करने का कोई अर्थ नहीं है। 'समाचार विविधा' के अन्तर्गत प्रकाशित 'शिक्षा की प्राथमिकतायें' का भी प्रकाशन औचित्य नहीं है। 'पाठकों की दृष्टि में' के अन्तर्गत डा० अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद, आचार्य शिवचन्द्र शर्मा, सहारनपुर, तथा डा० ए० एल० श्रीवास्तव द्वारा पिछले अंक में प्रकाशित श्री जौहरीमल पारख के विचारों के समर्थन में पत्र प्रकाशित हुए हैं जिससे ज्ञात होता है कि वस्तु-स्थिति को ठीक से ग्रहण नहीं किया गया है। श्री पारख की सोच पूर्णत: शुतुर-मुर्गी सोच है। हो सकता है प्रारम्भ में 'हिन्दू' धार्मिक संज्ञा न रही हो। डा० शशिकान्त जी की इस सन्दर्भ में टिप्पणी भी महत्वपूर्ण है। परन्तु समय के

साथ-साथ शब्दों के अर्थ भी कभी-कभी बदल जाया करते हैं। 'हिन्दू' शब्द भी अब विशेष वर्ग के लिये रूढ़ हो गया है जिसकी परिभाषा में जैन धर्म किसी प्रकार फिट नहीं होता।

—**श्री आदित्य जैन**, लखनऊ

पूर्व अंकों की भांति यह अंक भी जैन धर्म और दर्शन के बहुआयामी तत्वों से भरपूर है।

—**डा० राम सजीवन शुक्ल**, कोंच (जालौन)

शोध-खोज पूर्ण आलेखों ने मन को मोहित कर लिया। पत्रिका भावी पीढ़ी की मार्गदर्शक होगी।

—**पं० वीरचन्द्र जैन शास्त्री**, हजारीबाग

नवीन शोधपरक लेखों से परिपूर्ण यह अंक शोधार्थियों का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ जैन-धर्मदर्शन के विभिन्न आयामों से जिज्ञासु पाठकों को परिचित कराने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। पत्रिका का यह प्रगति क्रम निरन्तर बना रहे।

**डा० रज्जन कुमार**, वाराणसी

आपकी पत्रिका मिल रही है। सम्पादन और संकलन बहुत अच्छा हो रहा है। बधाइयां स्वीकारें।

**डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर'**, नागपुर

आप सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध निरन्तर लिखते रहते हैं, यह आजकल के अवसरवादी लोगों के लिये आदर्श है। **शोधादर्श** अपने गौरव के अनुकूल प्रकाशित हो रहा है, यह प्रसन्नता की बात है।

—**डा० रमेश चन्द्र जैन**, बिजनौर

आपने **शोधादर्श**—२९ के पृ० १६४ पर पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से सम्बन्धित "नवोदित तीर्थ" हेडिंग में उज्जैन के समाचार **अहिंसावाणी** से साभार लेकर छापे हैं सो उस बारे में मैं आपको एक वास्तविकता से परिचित कराने के लिये यह पत्र लिख रहा हूँ।

उज्जैन के अतिमुक्तक वन में भगवान महावीर स्वामी के ऊपर भव नामक रुद्र ने उपसर्ग किया था यह ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निर्विवाद सत्य है तथा वहाँ पर तपस्या कर रहे विष्णुकुमार मुनिराज ने अपनी विक्रिया ऋद्धि के

द्वारा हस्तिनापुर में अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों का उपसर्ग निवारण किया था, यह इतिहास भी रक्षाबन्धन कथानक से ज्ञात होता है। इन्हीं बातों को लेकर पूज्य माताजी ने उज्जैन वालों की भावनानुसार वहाँ के जैंहिसपुरा अतिशयक्षेत्र पर जीर्णोद्धार हेतु प्रेरणा प्रदान की। वहाँ के प्रतिष्ठित विद्वान पं० सत्यन्धर जी सेठी ने पं० बलभद्र जी द्वारा लिखित कतिपय प्रमाण के आधार पर पूज्य माताजी को बतलाया कि "यहाँ से अभयघोष मुनिराज ने निर्वाण प्राप्त किया था अतः इसे सिद्धक्षेत्र के रूप में विकसित करना है।" किन्तु इस विषय में ज्यादा सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त न होने से पूज्य माताजी ने वहीं पर पण्डितजी से कह दिया था कि इसे सिद्धक्षेत्र मानने में मेरा अभिमत नहीं है, आप इसे भगवान् महावीर की तपोभूमि के नाम से ही विकसित करें।

अन्य जो प्रेरणाएं वहाँ के लिए माता जी ने दी हैं वे सब इतिहास और आगम को ही दर्शाने वाली हैं। आचार्य श्री शांतिसागर महाराज चूँकि बीसवीं सदी के प्रथम मुनिमार्ग उद्धारक सन्त रहे हैं इसलिये उनके चरण तो वे जगह-जगह विराजमान करने की प्रेरणा देती हैं। इसी शृंखला में गोम्मटगिरि इन्दौर के निकट "ॐ गिरि" निर्माण के लिए उन्होंने श्री बाबूलाल जी पाटौदी को कहा। ॐ जहाँ भगवान् की दिव्यध्वनि का प्रतीक है वहीं पंचपरमेष्ठी नमस्कार का लघु रूप ॐ मन्त्र है।

—**क्षुल्लक मोतीसागर**, मांगीतुंगी/हस्तिनापुर

[हमें यह आभास नहीं था कि **अहिंसावाणी** की रिपोर्टिंग भ्रामक होगी। पर हम यह तो अपेक्षा कर ही सकते हैं कि **सम्यग्ज्ञान** पत्रिका (जो पूर्ण रूप से माता जी के प्रवचनों व उनके संघ के समाचारों को समर्पित है) में ऐसे समाचारों की सही रिपोर्टिंग प्रकाशित कर दी जाया करे। आशा है **सम्यग्ज्ञान** के प्रकाशक-सम्पादक इस ओर ध्यान देंगे। —अ० प्र० जै०]

**शोधादर्श**—२८, समावेशी सम्पादकीय दृष्टि का ताजा प्रमाण है प्रस्तुत अंक। बड़े कसाव और सौष्ठव के साथ समाज की नब्ज इसमें धड़कती है। पाठकीय जिजीविषा को झकझोरने वाली, साथ ही संयमित एवं प्रभावपूर्ण शोधालेखों से संयुक्त, पत्रिका का अपना ही एक स्थान है। आपका साहस और चिन्तन प्रशंसनीय है। जैन पत्रकारिता में संकल्पित यह दृष्टिसम्पन्न पत्रिका भविष्य में एक बड़ी हलचल के रूप में स्मरण की जाती रहेगी। ज्योति परिवार की विशिष्ट रश्मि है यह भी।

मैं इसके आगमन की प्रतीक्षा करती हूँ चूँकि मुझे विश्वास है जो इसमें मिलेगा, वह अन्यत्र नहीं है।

—**डा० (श्रीमती) नीलम जैन**, सहारनपुर

आपकी पत्रिका के माध्यम से शोधार्थी काफी लाभ उठा रहे हैं। आपके द्वारा दिये गये लेख लाभप्रद होते हैं। विशेष रूप से पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक एवं प्रकाशक श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जी (बाबूजी) के लेख एवं समाचार विमर्श बहुत अच्छे लगते हैं। जो बात जैसी होती है उसको उसी रूप में आप प्रस्तुत करते हैं। यह आपकी निडरता एवं सजगता है। साधुओं, सेठों एवं विद्वानों को ऐसे साधुओं की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए जो अब पांचों के पांचों महाव्रत समाप्त कर साधु कहलाने का हक रखते हैं, अन्यथा श्रमण परम्परा समाप्त होने में विलम्ब नहीं लगेगा।

—**डा० हरिश्चन्द्र शास्त्री**, मुरैना

अंक खोजपूर्ण सामग्री से पूर्ण है। विभिन्न पुस्तकों सम्बन्धी समीक्षात्मक टीपें संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित हैं। समाचार विमर्श के अन्तर्गत बहुत कुछ जानकारी नवीन होने के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धक भी है। अन्य सामग्री भी अच्छी है। सभी दृष्टि से अंक पठनीय बन पड़ा है।

—**श्री मदन मोहन वर्मा**, ग्वालियर

— —

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

# अनुक्रमाणिका

[शोधादर्श १ से २५ में प्रकाशित विविध सामग्री की अनुक्रमाणिका शोधादर्श २५ में पृ० १०१–२४ पर प्रकाशित है। उसी के अनुक्रम में शोधादर्श २६ से ३० की अनुक्रमाणिका नीचे प्रकाशित की जा रही है। पृष्ठ संख्या कोष्ठक में दी गई है।]

## लेखक – लेख अनुक्रमणिका :


| लेखक | लेख | अंक |
|---|---|---|
| डा० अभय प्रकाश जैन : | 164. ग्वालियर के जैन मन्दिरों की अनुपम भित्ति चित्र शैली | 28 (37-39) |
| डा० अमर पाल सिंह : | 165. क्रान्तिकारी अर्जुन लाल सेठी | 29 (144-53) |
| डा० अवतार सिंह : | 166. सिख धर्म और गुरु ग्रन्थ साहब | 26 (146-48) |
| श्री ई० आई० एल० जैक्सन : | 167. The Bible, Sacred Scripture of the Christians | 26 (149-51) |
| मेजर ई० एच० केन्टीनवाला : | 168. पारसी धर्म | 28 (22-23) |
| प्रो० एल० सी० जैन : | 169. संक्लेश और विशुद्धि | 29 (159-62) |
| डा० ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार' : | 170. पार्श्वनाथ विषयक प्राकृत साहित्य | 29 (154-58) |
| डा० (श्रीमती) कुसुम पटोरिया : | 171. विश्वलोचनकोशगत कतिपय नूतन शब्द | 27 (233-36) |
| डा० कैलाश नाथ द्विवेदी : | 172. जैन धर्म एवं दर्शन के प्रतिष्ठापक–नाटककार हस्तिमल्ल | 27 (237-39) |
| श्री कैलाश भूषण जिन्दल : | 173. मूक पशु की आवाज (1) | 27 (254-56) |
| | 174. मूक पशु की आवाज (2) | 28 (85-88,90) |
| डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी : | 175. नलविलास नाटक का काव्य सौन्दर्य | 28 (44-54) |
| श्रीमती गीता जैन : | 176. वृक्ष में भी प्राण हैं | 30 (277-80) |
| श्री गुलाब चन्द्र जैन : | 177. विदिशा-वैभव | 27 (244-47) |
| स्वामी गौरीश्वरानन्द : | 178. वैदिक हिन्दू धर्म | 28 (20-21, 26) |
| भिक्षु चन्द्र रत्न : | 179. बौद्ध धर्म | 28 (24-26) |
| डा० ज्योति प्रसाद जैन : | 180. समाज के सामने चुनौती | 26 (135-37) |
| | 181. शुभ राग की हेयोपादेयता | 27 (222-25) |

182. जैन धर्म 28 (17-19)
183. व्यसन जाल 29 (141-44)
184. Jainism is not a rebellious child of Vedicism orHinduism 30 (223-27)
कु० जरीन विक्काजी : 185. Zoastrianism and the Zend - Avesta 26 (152-54)
सरदार त्रिलोचन सिंह : 186. सिक्ख धर्म 28 (30-31,36)
फादर थियो पिन्टो : 187. ईसाई धर्म 28 (27, 29)
डा० प्रयाग नारायण मिश्र : 188. जैन साहित्य में लोकानुयोग साहित्य 27 (240-44)
डा० (कु०) मालती जैन : 189. गंगा : आचार्य जिनसेन की दृष्टि में 30 (248-51,55)
मौलाना मुहम्मद इरफान : 190. इस्लाम धर्म 28 (28-29)
श्री रमा कान्त जैन : 191. भारत में जैनधर्मावलम्बी 27 (250-53)
डा० (श्रीमती) रानी मजूमदार : 192. लुड्विग अल्सडोर्फ 30 (243-47)
श्री रामजीत जैन : 193. गिरनार सिद्धक्षेत्र—ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में 30 (252-55)
श्री लक्ष्मी नारायण कुरील : 194. बौद्ध धर्म—त्रिपिटक का विकास एवं लिपिकरण 26 (154-58)
डा० विनोद कुमार तिवारी : 195. जैन ऐतिहासिक पुरुष : सम्राट सम्प्रति 28 (32-36)
श्री वेद प्रकाश गर्ग : 196. वाचक कुशल लाभ और उनकी रचनायें 28 (55-63)
डा० शशि कान्त : 197. The Occult 27 (260-61, 264)
198. श्री सम्मेदशिखर विवाद 28 (69-77)
डा० शिव प्रसाद : 199. यशोभद्रसूरिगच्छ 27 (247-49)
डा० शैल नाथ चतुर्वेदी : 200. हिन्दू धर्म ग्रन्थ—वाचिक परम्परा और पुस्तक-लेखन 26 (159-61)
201. पर्यावरण और जीवदया 29 (171-72)
डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी : 202. पुरातत्त्व में पुस्तक-धारिणी सरस्वती 26 (167-69)
डा० सुदर्शन लाल जैन : 203. जैन आगम ग्रन्थों का लिपिकरण 26 (162-66)
कु० सुधा जैन : 204. भारतीय ध्यान पद्धति : एक दृष्टि 28 (39-44)
डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी : 205. भारतीय दर्शन में सृष्टि वर्णन 30 (233-42)

शोध सारांश

| शोध प्रबन्ध | शोधकर्ता | अंक |
|---|---|---|
| 16. पंचास्तिकाय का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन : | श्रीमती जैनमती जैन | 29 [167–70, 172] |

चिन्तन कण : श्री अजित प्रसाद जैन—

6. कासी कोसल के नौ मल्ल नौ लिच्छवि राजा 27 [256–57]
7. भगवान महावीर का अन्तिम धर्मोपदेश तथा उनका धर्म परिवार [258–59]
8. तीर्थंकर गर्भावतरण पर रत्नवृष्टि 28 [64–65]
9. छप्पन कुमारी देवांगनाएं [65]
10. सुमेरु पर्वत पर जन्माभिषेक (65–67)
11. कुछ रोचक प्रश्न एवं समाधान [67–69]
12. मध्य लोक 30 [264–66]

विचार-बिन्दु :

9. भगवान महावीर की प्राकृत : डा० शशि कान्त 26 [170–73]
10. आत्मघाती मांग : श्री जौहरी मल पारख 28 (78–85)
11. चमत्कार या वीतरागता ? : प्रा० सौ० लीलावती जैन 30 [256–60]
12. क्या वेदों में पशुहिंसा का उल्लेख है ? : आचार्य शिव चन्द्र शर्मा (260–64)

सम्पादकीय अग्रलेख : श्री अजित प्रसाद जैन—

11. वाग्देवी के अवतरण का पर्व–श्रुत पंचमी 26 [139–42]
12. जयति ज्योति पर्व 27 [226–32]
13. प्रथम इतिहास पुरुष 28 [6–13]
14. वीर शासन जयन्ति 29 [136-40]
15. शिथिलोन्मुख दिगम्बर साध्वाचार पर एक तीखा प्रहार 30 [227–32]

परिचर्चा :

| चर्चा कर्ता | समाधानकर्ता | अंक |
|---|---|---|
| 3. डा० अनिल कुमार जैन व श्री नीरज जैन : | श्री रमा कान्त जैन | 29 (163–66) |
| 4. श्री रामजीत जैन, श्री शांतिलाल के० शहा और श्री जमना लाल जैन : | श्री अजित प्रसाद जैन | 30 (269–76) |

**समाचार विमर्श : श्री अजित प्रसाद जैन—** अंक

40. शास्त्री परिषद का अधिवेशन 26 [190–92]
41. स्थानकवासी समाज के अनुकरणीय निर्णय [192–93]
42. महंगे चातुर्मास [194–95]
43. श्री मानत्तुंगाचार्य की चरण-पादुका [195]
44. नवोदित भाग्योदय तीर्थ, अमरकण्टक 27 [273–24]
45. पंचम, षष्टम और अब तृतीय पट्टाचार्य भी [274]
46. परमागम मन्दिर निर्माण योजना [275–76]
47. श्री चैत्यालय जी की स्थापना [276]
48. विद्वत् परिषद के प्रस्ताव [276–78]
49. चमत्कार को नमस्कार 28 [107–09]
50. क्या मिल रहा है कटुता बढ़ाने में [110–14]
51. त्रय गजरथ सहित पंच कल्याणक तथा गुरुमन्दिर स्थापना [114–16]
52. सम्मेद शिखर पर निर्माण कार्य 29 [192]
53. मांगीतुंगी पर पंचकल्याणक व आचार्यश्री की अवमानना [192–94]
54. नवोदित तीर्थक्षेत्र [194–97]
55. साध्वाचार के बदलते आयाम—यत्र तत्र सर्वत्र [197–203]
56. आचार्य द्वय के जन्म जयन्ति समारोह 30 [305–07]
57. तीर्थक्षेत्रों के नाम से भारी धोखाधड़ी [307–10]
58. शौरसेनी प्राकृत गोष्ठी [310–14]
59. अतिशय क्षेत्र केशवराय पाटन में भूगर्भ विस्तारीकरण [314–15]
60. श्री सम्मेद शिखर जी [315–17]
61. कुन्दकुन्द अंग्रेजी भाषा के समर्थक थे—
मुनि श्री की अभूतपूर्व खोज [317–18]

**गुरुगुण-कीर्तन : श्री रमा कान्त जैन—** अंक

25. देवनन्दि पूज्यपाद 26 [133–34]
26. आदिपुराणकार जिनसेन 27 [219–21]
27. हरिवंशपुराणकार जिनसेन सूरि 28 [1–5]
28. नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती 29 [133–35]
29. अमितगति 30 [219–22]

**रिपोर्ट**

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० : श्री अजित प्रसाद जैन, मन्त्री—
12. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष 1995–96 28 [93–97]

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन : रिपोर्ट–श्री रमा कान्त जैन—
12. स्मृति गोष्ठी–पुण्यतिथि (11-6-1995) 26 [175–76]
13. 84वीं जन्म जयन्ति (6-2-1996) 28 [91]
14. स्मृति दिवस—काव्य संध्या (11-6-1996) 29 [173–74]
**अन्य रिपोर्ट :**
3. श्री रमा कान्त जैन की षष्ठिपूर्ति :
रिपोर्ट–श्री अंशु जैन 28 [91–92]
**सम्पादकीय** : (निवेदन/प्रास्ताविक/टिप्पणी/रिपोर्ट) : डा० शशि कान्त—
16. टिप्पणी – समाज के सामने चुनौती 26 [137–38]
17. रिपोर्ट – श्रुतपंचमी पर्व पर संगोष्ठी [143–46]
18. टिप्पणी – बुद्ध के परिनिर्वाण का समय [158]
19. द्वादशांग के वाचन का सर्वप्राचीन उल्लेख [167]
20. मानव धर्म : प्रास्ताविक 28 [14–16]
21. टिप्पणी – 'हिन्दू' पर [82]
22. सम्पादक की ओर से – आत्म निवेदन 30 [280–82]
23. जैन विद्या (Jainology) सम्बन्धी अध्ययन/अनुशीलन [282–85]
**पद्य रचनायें :**
श्री अर्जुन लाल सेठी जैन : 28. अपनी बीती 29 (152–53)
श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' :
29. ज्योति प्रसाद श्रद्धाञ्जलि 26 (176)
30. समणसुत्तं (हिन्दी पद्यानुवाद)
अपरिग्रह सूत्र 140–46 26 (174–75)
अहिंसा सूत्र 147–59 27 (262–64)
डा० महावीर प्रसाद जैन : 31. भावाञ्जलि 29 (174)
श्री राजीव कान्त जैन :
32. गणतन्त्र दिवस बना प्रश्न चिन्ह 28 (89–90)
33. मैं (भटकन से सुलझन तक) 30 (267–68)
डा० शशि कान्त :
34. साठ बसन्त देख लिये तुमने 28 (92)
35. बहो, बहो, बहते चलो 30 (268)
**साहित्य सत्कार [समीक्षा] :**
श्री अजित प्रसाद जैन : 27 (265–67), 28 (98-101),
29 (175–84), 30 (285–93)
डा० ए० एल० श्रीवास्तव (इलाहाबाद) : 28 (101–02)

डा० कमल सिंह (मुजफ्फरनगर) : 29 (186)
प्रो० खुशाल चन्द्र गोरावाला (वाराणसी) : 26 (177-82)
श्री जमना लाल जैन (वाराणसी) : 27 (269-70)
श्री रमा कान्त जैन : 26 (182-85), 27 (267-68), 29 (184), 30 (294-99)
डा० शशि कान्त : 26 (185-89), 27 (270-72), 28 (102-07), 29 (187-91), 30 (299-304)
आचार्य शिव चन्द्र शर्मा (सहारनपुर) : 29 [184-85]
डा० शोभा लाल जैन (जयपुर) : 27 [268-69]

**विविध स्तम्भ** : संकलन श्री रमाकान्त जैन—

1. श्री महावीर वचनामृत :
   27 [259], 28 [13], 29 [140], 30 [222]
2. समाचार विविधा :
   26 [197-99], 27 [280-84], 28 [119-25], 29 [204-09], 30 [321-26]
3. अभिनन्दन—शोध की सफलता, आदि :
   26 [196-97], 27 [279-80], 28 [117-19], 29 [203-04], 30 [319-21]
4. शोक संवेदन :
   26 (199), 27 (285-86), 28 (125-26), 30 (326-27)
5. आभार :
   26 (199), 27 (284), 28 (127), 29 (209), 30 (327)
6. लेखक परिचय :
   26 (132), 27 (218), 28 (iv), 29 (iv), 30 (iv)

**पारखी पाठक :**

102. ब्र० अजित विवित्सु, ललितपुर 29 (218) ; 103. डा० अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद 29 (211) ; 104. डा० अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर 26 (208) ; 105. पं० अमृत लाल जैन शास्त्री, लाडनूं/वाराणसी 26 (214), 27 (286), 28 (128) ; 106. डा० अशोक कुमार कालिया, लखनऊ 26 (202) ; 107. श्री आदित्य जैन, लखनऊ

27 [288], 30 [329-30] ; 108. प्रो० डा० आर० सी० गुप्ता, रांची/झांसी 26 [211], 28 [130] ; 109. श्री इन्द्रजीत जैन, कानपुर 28 [127] ; 110. श्री उत्तम चन्द जैन, लखनऊ 27 [287-88] ; 111. डा० ए० एल० श्रीवास्तव, इलाहाबाद 26 [204], 28 [129], 29 [214-15] ; 112. जस्टिस एम० एल० जैन, नई दिल्ली 28 [129-30], 29 [216] ; 113. प्रो० डा० अंगने लाल, फैजाबाद 29 [214] ; 114. डा० ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार', वैशाली 26 [213], 27 [288] ; 115. श्री कुन्दन लाल जैन, दिल्ली 26 [201] ; 116. प्रो० के० डी० मिश्रीकोटकर, चान्दुर बाजार 26 [208-09] ; 117. डा० केशव प्रसाद गुप्त, चरवा (इलाहाबाद) 27 [288-89] ; 118. डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, कोंच 27 [290] ; 119. श्री कैलाश भूषण जिन्दल, लखनऊ 27 [291-92] ; 120. डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी, बलीपुर टाटा, प्रयाग 27 [289] ; 121. डा० गिरिजा शंकर शर्मा, बीकानेर 28 [127] ; 122. श्रीमती गीता जैन, मुम्बई 30 [328] ; 123. श्री गुलाब चन्द्र जैन, विदिशा 26 [207], 27 [289], 29 [215] ; 124. भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्यवर्य स्वामी जी, मूडबिद्री 26 [200] ; 125. श्री जमना लाल जैन, सारनाथ, वाराणसी 26 [214], 27 [287], 30 [329]; 126. डा० जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, वृन्दावन/आगरा 26 [207] ; 127. ब्र० जय निशान्त, टीकमगढ़ 26 [212] ; 128. डा० (श्रीमती) जैनमती जैन, आरा 26 [211], 28 [132] ; 129. श्री डाल चन्द जैन, सागर 26 [212] ; 130. प्रो० डा० डी० सी० जैन, आरा 26 [211] ; 131. श्री तारा चन्द्र जैन अग्रवाल, पचेवर 26 [206] ; 132. श्री तारा चन्द्र 'प्रेमी', फिरोजपुर झिरका 28 [128] ; 133. डा० दरबारी लाल कोठिया, बीना (सागर) 26 [201], 28 [130] ; 134. श्री धर्मानन्द, नई दिल्ली 26 [209] ; 135. डा० नन्द लाल जैन, रीवां 26 [202] ; 136. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, देहरादून 26 [206], 27 [287], 29 [209-10] ; 137. प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद 26 [200] ; 138. श्री नरेश चन्द्र जैन, लखनऊ 27 [290-91] ; 139. डा० नलिन कुमार शास्त्री, बोध गया 27 [290] ; 140. डा० निजामुद्दीन, बलैनी (मेरठ) 28 [132] ; 141. डा० (कु०) नीना जैन, शिवपुरी 26 [212] ; 142. श्री नीरज जैन, सतना 29 [211-12] ; 143. डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, वाराणसी 26 [202], 29 [211] ; 144. डा० (श्रीमती) नीलम जैन, सहारनपुर 26 [204], 29 [216], 30 [331] ;

145. पं० पद्म चन्द्र जैन शास्त्री, नई दिल्ली 26 [206] ; 146. पं० पवन कुमार शास्त्री 'दीवान', मुरैना 28 [132] ; 147. श्री पार्श्व कुमार जैन, लखनऊ 26 [209] ; 148. श्री प्रेम चन्द जैन मित्तल, बड़ौत 28 [132]; 149. डा० प्रेम सुमन जैन, उदयपुर 26 [203–04] ; 150. डा० फूल चन्द जैन 'प्रेमी', वाराणसी 29 [213] ; 151. बालासाहेब सातप्पा बलवान, बेडकीहाल 28 [130] ; 152. डा० बी० के० खड़बड़ी, संकेश्वर 26 [201]; 153. डा० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', भोपाल 26 [213] ; 154. डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर 26 [212], 30 [330] ; 155 श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर 30 [332] ; 156. डा० (कु०) मनोरमा जैन, रोहतक 26 [204] ; 157. पं० मल्लिनाथ जैन शास्त्री, चेन्नई (मद्रास) 29 [216–17] ; 158 डा० महावीर प्रसाद जैन, लखनऊ 26 [210] ; 159. श्री महेन्द्र कुमार भारिल्ल, इटारसी 29 [215–16] ; 160. डा० महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद 27 [287], 29 [218] ; 161. डा० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, अलीगढ़ 26 (207) ; 162. डा० मानिक चन्द मालू, हावड़ा 26 (213) ; 163. डा० (कु०) मालती जैन, मैनपुरी 29 (213–14) ; 164. डा० (कु०) मीरा जैन, ग्वालियर 26 (206) ; 165. डा० (श्रीमती) मीरा द्विवेदी, वनस्थली 27 (290) ; 166 श्री मुन्ना लाल जैन, फिरोजाबाद 26 (205) ; 167. श्री मोती लाल जैन 'विजय', कटनी 26 (213), 28 (131) ; 168 क्षु० मोती सागर, मांगीतुंगी/हस्तिनापुर 30 (330–31) ; 169. श्री मोहनलाल जैन छाजेड़, मनमाड 27 (290) ; 170. डा० रञ्जन कुमार, वाराणसी 30 (330) ; 171. डा० रतन लाल जैन, हांसी 26 (203) ; 172. डा० (श्रीमती) रमा जैन, छतरपुर 29 (217) ; 173. डा० रमेश चन्द्र जैन, बिजनौर 30 (330) ; 174. डा० रमेश चन्द्र शर्मा, वाराणसी 26 (209) ; 175. डा० रवीन्द्र कुमार जैन, चेन्नई (मद्रास) 26 (205) ; 176. श्रीमती राज दुलारी जैन, कानपुर 27 (289), 28 (131) ; 177. श्री राजमल जैन, नई दिल्ली 26 (208) ; 178. श्री राजेन्द्र कुमार जैन, लखनऊ 26 (205) ; 179 डा० राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई 26 (212), 27 (288) ; 180. श्री राजेन्द्र नगावत, नोएडा 26 (212) ; 181. डा० राम सजीवन शुक्ल, कोंच 28 (132), 30 (330) ; 182. श्री रूप चन्द्र कटारिया, दिल्ली 26 (209) ; 183. प्रो० लक्ष्मी चन्द जैन, जबलपुर 26 (201) ; 184. डा० लाल चन्द्र जैन, वैशाली 28 (132) ; 185. श्रीमती वासंती शाह, पुणे 27 (287) ; 186. ब्र० विद्युल्लता शहा, सोलापुर 26 (205) ; 187. डा० विनोद कुमार

तिवारी, रोसड़ा 26 (202) ; 188. पं० विमल कुमार जैन सौंरैया, टीकमगढ़ 26 (203) ; 189. श्रीमती विमला जैन, कटनी 28 (131) ; 190. श्रीमती विमला जैन, भोपाल 29 (210) ; 191. पं० वीर चन्द्र जैन शास्त्री, हजारीबाग 30 (330) ; 192. श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर 26 (204), 27 (289), 28 (130) ; 193. श्री श्रेणिक अन्नदाते, डोंबिवली (पूर्व) 26 (211) ; 194. श्री शांतिलाल के० शहा, सांगली 26 (205), 27 (289), 29 (213), 30 (329) ; 195. आचार्य शिव चन्द्र शर्मा, सहारनपुर 29 (212-13), 30 (329) ; 196. डा० शिव प्रसाद, वाराणसी 26 (212) ; 197. डा० शीतल चन्द जैन, जयपुर 26 (210) ; 198. डा० शेखर चन्द्र जैन, अहमदाबाद 26 (203) ; 199. साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, खुर्जा 26 (208) ; 200. पं० सत्यन्धर कुमार सेठी, उज्जैन 26 (200) ; 201. डा० सन्तोष कुमार तिवारी, सागर 29 (215) ; 202. डा० सन्तोष कुमार बाजपेयी, सागर 26 (206–07) ; 203. श्रीमती समता जैन, आरा 29 (212) ; 204. श्री सुकुमार चन्द्र जैन, मेरठ 26 (205) ; 205. श्री सुखमाल चन्द जैन, नई दिल्ली 30 (328) ; 206. श्रीमती सुधा शेठ, अगास 29 (218) ; 207. श्री सुन्दर सिंह जैन, दिल्ली 26 (211) ; 208. डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी, रुड़की 26 (208) ; 209. श्री सुबोध कुमार जैन, आरा 26 (207), 29 (210) ; 210. श्री सुमेर चन्द्र जैन, मुजफ्फरनगर 26 (206) ; 211. डा० सुरेन्द्र कुमार आर्य, उज्जैन 26 (210) ; 212. श्री सुरेश 'सरल', जबलपुर 26 [207] ; 213. श्री हजारी मल बांठिया, कानपुर 27 (289), 30 [328–29] ; 214. डा० हरिश्चन्द्र जैन शास्त्री, मुरैना 26 [213–14], 30 [331–32] ; 215. डा० हिमाद्रि बनर्जी, कलकत्ता 26 (211) ; 216. श्री हुकम चन्द जैन, मेरठ 28 (131) ; 217. श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, लखनऊ 26 (209)।

——

# इस अंक के लेखक

| | |
|---|---|
| **श्री अजित प्रसाद जैन** | : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अ. प्रा.)<br>मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र<br>पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४ |
| **श्रीमती गीता जैन** | : १२, हीरा भवन, कुणाल चौक,<br>वी. पी. रोड, मुलुण्ड (पश्चिम), मुम्बई-४०००८० |
| **डा० ज्योति प्रसाद जैन** (स्व०) | : विश्व-विश्रुत विद्वान |
| **डा० (कु०) मालती जैन** | : अध्यक्ष हिन्दी विभाग,<br>श्री चित्रगुप्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय<br>१४६, कटरा, मैनपुरी-२०५००१ |
| **श्री रमा कान्त जैन** | : उप सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)<br>ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४ |
| **श्री राजीव कान्त जैन** | : डिविजनल सिगनल एवं टेलीकाम इंजीनियर, प.रे.<br>५४२-ए, रेलवे आफिसर्स कालोनी,<br>कोटा-३२४००२ |
| **डा० (श्रीमती) रानी मजूमदार** | : प्रवक्ता, संस्कृत विभाग<br>अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,<br>अलीगढ़-२०२००२ |
| **श्री राम जीत जैन** | : एडवोकेट<br>दानाओली, टकसाल गली, ग्वालियर-४७४००१ |
| **प्रा० सौ० लीलावती जैन** | : सम्पादिका, धर्म मंगल<br>४/५, भीकम चंद जैन नगर, पिम्प्राले रोड,<br>जलगांव-४२५००१ |
| **आचार्य शिव चन्द्र शर्मा** | : वयोवृद्ध साहित्य समीक्षक<br>११, गांधी कालोनी, सहारनपुर-२४७००१ |
| **डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी** | : प्रवक्ता, संस्कृत विभाग<br>वी. एस. एम. (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय,<br>रुड़की-२४७६६७ |
| **डा० शशि कान्त** | : विशेष सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)<br>ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४ |